खण्ड

3

विचारों की यात्रा एवं अनुवाद

इकाई 7
विचारों का विकास एवं समाज 77

इकाई 8
विचारों का सार्वभौमीकरण एवं अनुवाद 86

इकाई 9
विचारों का अभिग्रहण एवं रूपान्तरण 100

खण्ड 3 का परिचय

खण्ड तीन का शीर्षक है **विचारों की यात्रा एवं अनुवाद। इस** खण्ड में कुल इकाइयों की संख्या तीन हैं। नीचे इन तीनों इकाइयों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

इकाई 7 **विचारों का विकास एवं समाज** से सम्बन्धित है। प्रस्तुत इकाई में छात्र-छात्राओं की सुविधा को ध्यान में रखते हुए एकदम प्रारम्भ से विचार एवं उसकी अवधारणा पर विस्तार से बात की गई है। विचार किसी समाज विशेष का अंग होते हैं और परिस्थिति विशेष में जन्मते हैं। प्रत्येक विचार का अपना एक आधार होता है। स्पष्ट ही है कि विचार बिना किसी कारण के नहीं उपजते। यहाँ इस इकाई के माध्यम से कुछेक महत्वपूर्ण विचारों के माध्यम से इस पूरी प्रक्रिया को समझाया गया है। साथ ही विचारों के प्रचार में अनुवाद की भूमिका पर भी विचार किया गया है।

इकाइ 8 का शीर्षक है **विचारों का सार्वभौमीकरण एवं अनुवाद।** पिछली इकाई में जहाँ विचारों के जन्म एवं विकास की चर्चा की गई है, वहीं इस इकाई के अन्तर्गत विचारों के सार्वभौमीकरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। यह स्पष्ट है कि विचार किसी परिस्थिति विशेष की उपज होते हैं। यह भी स्पष्ट है कि विचारों के सार्वभौमीकरण में अनुवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किन्तु यह बताना अति आवश्यक है कि विचारों की इस यात्रा में वे ही विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं जो अन्य संस्कृतियों के लिए भी उपयोगी होते हैं। अर्थात सार्वभौमीकरण की यह प्रक्रिया सभी विचारों पर लागू नहीं होती। जो विचार अपनी संस्कृति के अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों के लिए भी जरूरी हों वे अनुवाद के माध्यम से अपने समय, स्थान और काल की सीमा को लाँघकर कालजयी हो जाते हैं। इस इकाई में सार्वभौमीकरण की इस प्रक्रिया एवं इसके विभिन्न बिन्दुओं पर क्रमवार विचार किया गया है।

इकाई 9 का शीर्षक है **विचारों का अभिग्रहण एवं रूपान्तरण।** खण्ड तीन की तीनों इकाइयाँ आपस में एक दूसरे से गुँथी हुई हैं। जहाँ पिछली इकाई में हमने सार्वभौमीकरण की प्रक्रिया की चर्चा की वहाँ इस इकाई के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया जा रहा है कि सार्वभौमीकरण की इस प्रक्रिया में विचारों के रूपान्तरण एवं अभिग्रहण की भी आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह कि विचार किसी परिस्थिति विशेष की उपज तो होते हैं किन्तु जब वे अपने समय, स्थान और काल की सीमा लाँघकर कालजयी बनते हैं तब वे जस के तस एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाते हैं अपितु संस्कृति विशेष उन्हें अपनाने से पहले उनमें अपनी संस्कृति की आवश्यकता के अनुसार कुछ परिवर्तन करती है। परिवर्तन की यही प्रक्रिया रूपान्तरण एवं अभिग्रहण कहलाती है। प्रस्तुत इकाई में बेहद विस्तार से इस पूरी प्रक्रिया पर चर्चा की गई है।

इकाई 7 विचारों का विकास एवं समाज

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 विचारों का विकास

7.2.1 अहिंसा

7.2.2 डार्विनवादः क्रमिक विकास का सिद्धान्त

7.2.3 न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त

7.3 समाज में विचारों का विकास एवं अनुवाद

7.4 सारांश

7.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

7.6 शब्द सूची

7.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे किः

- विचारों का उद्‌भव और विकास कैसे होता है;
- विचारों की यात्राएँ कैसे सम्भव होती है;
- व्यक्ति, समाज और विचार के बीच आपसी सम्बन्ध कैसे बनते हैं;
- विचारों को समाज में कैसे वैधता मिलती है; और
- समाज में विचारों की इस यात्रा में अनुवाद की क्या भूमिका है।

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत खण्ड समाज में विचारों के विकास एवं उसमें अनुवाद की भूमिका से सम्बन्धित है। यहाँ हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि विचारों की यह यात्रा कैसे सम्भव होती है। कमोबेश अब तक के समाजों का इतिहास विचारों, प्रयोगों एवं आविष्कारों का इतिहास है। किसी भी विचार के उद्‌भव के कारणों की पड़ताल की जा सकती है लेकिन जैसा कि फ्रांसीसी चिन्तक फूको ने कहा है किसी भी विचार की उत्पत्ति कब हुई, निश्चित रूप से या प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता है। हाँ, ज्ञात स्रोतों के आधार पर उसके इतिहास को बताया जा सकता है। मसलन अहिंसा के विचार को लें। यह कब, कहाँ और कैसे पनपा ठीक-ठीक बताना मुश्किल है। लेकिन उपलब्ध स्रोतों के आधार पर इसके इतिहास को दर्ज किया जा सकता है। इसके विकासानुक्रम को पकड़ा जा सकता है।

समाज में विचारों की यात्राएँ परम्परागत एवं नवीन जनसंचार माध्यमों, अनुयायियों (फालोवर), संस्थाओं पर तो निर्भर करती ही हैं, भाषा और अनुवाद पर भी निर्भर करती हैं। गाँधीवाद, मार्क्सवाद, डार्विनवाद, मानववाद आदि विचारधाराएँ अगर पूरी दुनिया में फैलीं तो उसका बड़ा कारण इन विचारों का अनेक भाषाओं में अनुवाद होना है। गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' मातृभाषा गुजराती में लिखी लेकिन उसे अनुवाद के माध्यम से पूरी दुनिया पढ़ रही है। वैसे ही कार्ल मार्क्स ने अपने विचार जर्मन भाषा में रखे, लेकिन उनके समाजवाद सम्बन्धी मत का फैलाव अनुवाद के माध्यम से पूरी दुनिया में हुआ। मैक्समूलर ने भारत के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा वह जर्मन में है,

लेकिन हमारी संस्कृति के बारे में लिखी गई बातें हमें अनुवाद के माध्यम से हासिल हुईं। संक्षेप में कहें तो समाज में किसी भी विचार के प्रचार-प्रसार, फैलाव एवं सम्प्रेषण में अनुवाद की भूमिका सर्वोपरि है। उसका महत्व असंदिग्ध है।

7.2 विचारों का विकास

इस बात को लेकर हमेशा ही विवाद बना रहा है कि विचारों के उद्‌भव का कारण व्यक्ति है या समाज। तर्क का एक आयाम कहता है कि चूंकि व्यक्ति परिवार या समाज में जन्म लेकर उसका एक अभिन्न अंग होते हैं और वे जो कुछ भी (शिक्षा, ज्ञान, भाषा) हासिल करते हैं उसमें उसकी भूमिका गौण होती है और समाज की मुख्य। लेकिन तर्क का दूसरा पहलू यह है कि कुछ व्यक्ति इतने प्रतिभाशाली और विशिष्ट होते हैं कि वे जितना समाज से हासिल करते हैं उससे कहीं ज्यादा समाज को देते हैं। उदाहरण के तौर पर लोग न्यूटन, डार्विन, कार्ल मार्क्स, महात्मा गाँधी, आइंस्टिन, मार्टिन लूथर किंग सरीखे व्यक्तियों का नाम लेते हैं। ऐसे नामों की सूची हजारों में होगी जिनके अवदानों पर विचार किया जा सकता है। इसमें सच्चाई भी है कि इन्होंने समाज को इतना दिया कि उसकी दिशा ही बदल गई। इनके सिद्धान्तों, विचारों ने विश्वव्यापी असर पैदा किया है। बहरहाल, यह तो सर्वमान्य रूप से स्वीकृत है कि जंगल राज या बर्बर राज से होते हुए हमने आधुनिक समाज में प्रवेश किया है। चिन्तन पद्धति की नई शृंखला को शामिल कर लें तो अब हम उत्तर आधुनिक समाज के भीतर रह रहे हैं। या कहें इससे भी आगे निकल गए हैं, निकल रहे हैं। यह मानना, जानना या कहना भी दरअसल विचारों की यात्राओं को ही स्वीकार करना है। यानी मनुष्य समुदाय के विकासक्रम को जानना या समझना उन विचारों को ही जानना या समझना है जिन्होंने इसे सम्भव किया है। यानी इसे संक्षेप में परिभाषित करना हो तो हम कह सकते हैं कि - अब तक के समाजों का विकास दरअसल विचारों का विकास है। हाँ, इसमें यह जोड़ा जा सकता है कि विचारों के साथ - साथ प्रयोगों तथा आविष्कारों का भी महत्व असन्दिग्ध है। मसलन आग का आविष्कार सिर्फ प्रयोग भर नहीं था बल्कि एक विचार भी था या है। समाजशास्त्रियों और इतिहासकारों का यह कहना है कि आग के आविष्कार ने न सिर्फ जंगली जानवरों से मनुष्यों की रक्षा की बल्कि भोजन पकाकर खाने के विचार को भी जन्म दिया। सभ्यता के विकास में आग की भूमिका महत्तर और सर्वस्वीकृत है।

समाज में विचारों का विकास अथवा उनकी यात्राओं के महत्वपूर्ण घटक :

समाज में विचारों का विकास या उसकी यात्राएँ कई महत्वपूर्ण घटकों पर निर्भर करती हैं। उदाहरण स्वरूपः

1. आविष्कार या खोज
2. संस्थाएँ (धर्म)
3. स्वीकृति
4. माध्यम

   क. भाषा एवं अनुवाद

   ख. तकनीक

   - प्रिंट मीडिया (पुस्तकें, अखबार, मैगजीन, पंपलेट, ब्रोसर)
   - इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (रेडियो, टीवी, फैक्स, मोबाइल, इंटरनेट आदि)

इसके अलावा भी अन्यानेक माध्यम हैं जिनके द्वारा विचारों का प्रचार-प्रसार होता है। हम जानते हैं कि प्राचीन और मध्यकालीन समाज में भी विचारों का प्रचार - प्रसार होता था तब जबकि उस दौर में आज की तरह जनसंचार माध्यम उपलब्ध नहीं थे। ऐसा भी नहीं है कि आधुनिकता और छापाखाने के विकास तथा नए जनसंचार माध्यमों ने विचारों को प्रचारित - प्रसारित करने के उन परम्परागत माध्यमों को स्थगित कर दिया है। बल्कि वे तमाम तौर तरीके आज भी विद्यमान हैं। जैसे - आज भी साधु-संत, मुनि आदि प्रवचनों, सम्मेलनों, गोष्ठियों, परिचर्चाओं आदि के माध्यम से अपनी बातों - विचारों को लोगों तक पहुँचाते हैं। प्राचीन और मध्यकालीन भारत में ऋषि-मुनि, ज्ञानी

- ध्यानी, साधु - संत, सूफी - मौलवी एवं धर्माचारी अपने धर्म, धार्मिक उपास्य (ब्रह्म), एवं शाखाओं के विचारों, प्रवचनों को धर्मावलम्बी अनुयायियों के माध्यम से प्रचारित-प्रसारित करते थे। वे पूरे वर्ष भर देश-देश, राज्य-राज्य घूम-घूमकर अपने विचारों को फैलाते थे। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार भगवान बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार चालीस वर्षों तक किया। जैनियों और बौद्धों ने अहिंसा जैसे सार्वकालिक, सार्वभौमिक मूल्यवान विचार संघों, शाखाओं, प्रचारकों, अनुयायियों द्वारा तथा प्रवचनों, वार्ताओं, सम्मेलनों का सहारा लेकर प्रचारित-प्रसारित किया जिस पर विस्तार से आगे चर्चा की जाएगी। यहाँ हम केवल यह कहना चाह रहे हैं कि पुराने समय में मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे आदि धार्मिक सत्ता के बहुत ताकतवर केन्द्र थे और विचारों को प्रचारित- प्रसारित करने के महत्वपूर्ण कारक भी।

सर्वप्रथम हम यहाँ यह जानने का प्रयास करेंगे कि सार्वकालिक और सार्वभौमिक मूल्यवान विचार अहिंसा क्या है और इस विचार का विकास कैसे हुआ एवं समाज में इसकी यात्राएँ कैसे सम्भव हुई?

7.2.1 अहिंसा

अहिंसा अति प्राचीन शब्द है। कई लोग इसे 'अ-हिंसा' नकारात्मक शब्द की तरह लेते हैं जबकि अपनी सृजनात्मकता एवं मूल्यवाचकता में यह शब्द सकारात्मक है। इसका शाब्दिक अर्थ 'चोट न पहुँचाना' या 'हत्या न करना' है। अंग्रेजी में इसके लिए 'नॉन वायलेंस' शब्द का इस्तेमाल होता है। समय के साथ या कहें सामाजिक परिवर्तनों के साथ इस शब्द के स्वरूप में परिवर्तन होता गया है। कभी इस शब्द का प्रयोग अर्थ संकोच में हुआ है तो कभी व्यापक अर्थ में। कभी रूढ़िवादी अर्थ में तो कभी लचीले रूप में। हां, इसकी व्याख्या में धार्मिक स्वरूप किसी न किसी रूप में जरूर विद्यमान रहा है। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में महात्मा गाँधी ने इसे राजनीतिक स्वरूप प्रदान किया और मानव धर्म बना दिया। दूसरे शब्दों में, यह मानव धर्म के पर्यायवाची के अर्थ में प्रयोग होने लगा। यह व्यक्तिगत आचरण से आगे बढ़कर सामूहिक मानवीय कर्म में बदल गया। इसलिए गाँधी ने दुनिया का ध्यान पूरी तरह अपनी ओर आकृष्ट किया। गाँधी पूर्व इसका रूप राजनीतिक कम, धार्मिक और सांस्कृतिक अधिक था।

आध्यात्मिक क्षेत्र में अहिंसा का अर्थ है प्राणातिपात का सर्वथा निषेध। किसी भी प्राणी को न मारना, न मारने वाले का अनुमोदन ही करना। अहिंसा शब्द का अर्थ व्यावहारिक जीवन में मनुष्य के सर्वोत्तम नैतिक गुणों का प्रतिपादन है, जैसे - परोपकार, दया, कृपा, हित-कामना, उदारता, दानशीलता, परहितेच्छा। लोगों की सामान्य जानकारी में अहिंसा का निषेधात्मक प्रकार ही होता है, किन्तु अहिंसा के विधेयात्मक रूप या प्रकार भी होते हैं जैसे - दया करना, सहायता देना, दान करना आदि। अहिंसा का अर्थ यद्यपि जनकल्याण होता है, दूसरों की रक्षा होता है लेकिन इसका मुख्य उद्देश्य आत्मकल्याण ही है। अहिंसा व्रत के पालन में आत्मसंयम ही साध्य का काम करता है। इसी प्रकार सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह अहिंसा के पोषक तत्व हैं :

कर्मणा मनसा वाचा, सर्वभूतेषू सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्ता अहिंसा परभार्षिमि।।

मन, वचन तथा कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को किसी तरह का कष्ट नहीं पहुँचाना इसी को महर्षियों ने अहिंसा कहा है। अहिंसा का अर्थ सूक्ष्म जन्तुओं से लेकर मनुष्य तक सभी जीवों के प्रति समभाव पूर्ण अहिंसा एवं सम्पूर्ण जीवधारियों के प्रति दुर्भावना का सम्पूर्ण अभाव है। इसलिए वह मानवेतर प्राणियों यहाँ तक कीड़ों और हिंसक जीवों से भी प्रेम करता है। अहिंसा की कोई एक निश्चित परिभाषा नहीं है।

विचार के रूप में अहिंसा की शुरुआत कैसे हुई, कहाँ हुई और समाज में यह विचार कैसे फैला इस पर सोचें तो इसके विकासानुक्रम में जाना पड़ेगा और ज्ञात स्रोतों को आधार बनाना पड़ेगा। क्योंकि इसकी विधिवत शुरुआत कैसे और कहाँ हुई बताना मुश्किल है। अनुमान के आधार पर कहा जाता है कि इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत धर्म एवं विचारों से आंशिक रूप से सम्बद्ध रहा है। शुरू में अहिंसा की भावना सामाजिक जीवन के साथ उत्पन्न हुई। और अपनी उपयोगिता के लिए ही विकसित हुई। इसलिए उसकी मर्यादा सीमित रही। लेकिन पूँजी के निर्माण के साथ ही इसकी शुरुआत हुई। मानव का सहनिवास, शक्ति अर्जन का प्रयास इसका कारण बना। कबीले और राज्य के विस्तार की भावना और नीति ने हिंसक प्रवृत्ति को जन्म दिया, विकसित किया। इसी के साथ अहिंसा

का विचार भी पनपने लगा। यानी दो परस्पर विरोधी विचार एक साथ पनपे। भारतीय परम्परा में देखें तो पता चलता है कि आर्य संस्कृति के प्रारम्भिक स्वरूप में अहिंसा विद्यमान थी। लेकिन उसका स्वरुप पूर्णतः अहिंसक नहीं था। लेकिन उपनिषद काल तक आते-आते वह अपने सम्पूर्ण बौद्धिक परिमार्जन के रूप में प्रकट हुआ।

अहिंसा शब्द का पहली बार प्रयोग छान्दोग्य उपनिषद में हुआ। पातंजलियोग सूत्र में उसे समुचित महत्व दिया गया। पंचायत में अहिंसा को शामिल किया गया। यह माना गया कि इससे मनुष्य का आध्यात्मिक महत्व सम्भव है। महाभारत में अहिंसा के उल्लेखों की भरमार है। महाभारत के अनुशासन पर्व को यदि अहिंसा पर्व की संज्ञा दें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहाँ अहिंसा की सर्वाधिक लोकप्रिय व्याख्या करते हुए अहिंसा को परम धर्म, परम सत्य, परम तप, परम संयम, परम यज्ञ, परम मित्र, परम सुख तक कहा गया है। अहिंसा को ही सब धर्मों की उत्पत्ति का कारण माना गया है। महाभारत से अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं - 1. अहिंसा निरतः स्वर्ग गच्छेदिति मतिर्मम। 2. अहिंसा धर्म नित्यता। 3. अहिंसा सत्य वचनमसंतो लोक सत्कृताः। 4. अहिंसा सत्यम क्रोधः सर्वाश्रमगतं तपः। 5. अहिंसा परमो धर्मो हिंसा चा धर्मलक्षणा। 6. अहिंसा सर्वाभुतानामेतत कृत्यतमं मतम। आदि-आदि। हिन्दू धर्मग्रंथ, रामायण, महाभारत, पुराण एवं उपनिषदों आदि में अहिंसा पर काफी बल दिया गया है। ऋषियों ने इस बात पर काफी बल दिया है कि अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। अहिंसा से बढ़कर कोई सुख नहीं है। पालिग्रंथों ने तो सभी प्राणियों की हिंसा को वर्जित बताया है।

जैन धर्म ने अहिंसा को न सिर्फ सर्वोच्च मूल्य की तरह प्रस्तुत किया बल्कि भगवान महावीर ने मगध, कौशल, अंग, मिथिला, काशी आदि नगरों में घूम-घूमकर जबरदस्त प्रचार-प्रसार किया। राजा, धनी, व्यापारी से लेकर जनसाधारण सभी उसके अनुयायी थे। अहिंसा को लोकप्रिय बनाने में उनकी विश्व प्रसिद्ध ख्याति है। उस दौर में हिंसा का इतना बोलबाला था कि महावीर का प्रचार-प्रसार आम जनता को छू गया। उन्होंने यज्ञों में प्रचलित हिंसा और पशुबलि को रोकने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया। अहिंसा को जीवन आचरण से जोड़ा। अहिंसा को आत्मकल्याण या मोक्ष प्राप्ति और अन्य प्राणियों के प्रति उपकार से जोड़कर सार्वकालिक और सार्वभौमिक विचार बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया। उन्होंने 'अहिंसा परमो धर्मः' और 'जियो और जीने दो' का नारा देकर अहिंसा को उच्चतर महत्ता प्रदान की। भारतीय सामाजिक इतिहास में यह विचार ऐतिहासिक महत्व रखता है। जैन धर्म की लोकप्रियता का कारण भी यही अहिंसा का विचार है। यहाँ हम देख सकते हैं कि महाभारत में उल्लेख किया गया 'अहिंसा परमो धर्मो, हिंसा चा धर्मलक्षणा' भी मौजूद है। यानी विचार एक शास्त्र से दूसरे में आ जा रहे थे। यह आवाजाही शास्त्र तक सीमित नहीं थी बल्कि समाज के कोने-कोने में आसानी से आवाजाही कर रहे थे। दूसरे शब्दों में कहें तो, शास्त्र से व्यक्ति तक और व्यक्ति से समाज तक तथा इसका उलटा, समाज से व्यक्ति तक और व्यक्ति से शास्त्र तक विचारों की यह शृंखला चलती रहती है। यहाँ हमें यह भी देखना होगा कि इन विचारों का प्रसार भाषायी अनुवाद के माध्यम से भी फैल रहा था। महाभारत संस्कृत ग्रंथ है जबकि महावीर के विचार प्राकृत में संकलित हैं। महाकवि तुलसीदास ने 'परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा' लोकभाषा अवधी में कहा। अर्थात विचारों के प्रचार-प्रसार में (भाषायी) अनुवाद की महत्ता असंदिग्ध है।

भगवान बुद्ध के विचार पालिग्रंथों में संकलित हैं। अहिंसा के प्रचार-प्रसार में जितना योगदान बुद्ध का है, शायद ही किसी और का हो। अहिंसा की सबसे बुलन्द आवाज इन्हीं की थी। भारत ही नहीं दुनिया के इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ा। बौद्ध धर्म में मन, वचन तथा कर्म से अन्य प्राणियों को कष्ट न देने को अहिंसा कहा गया है। कोई चाहे तो तर्क कर सकता है कि अहिंसा को बुलन्दी पर पहुँचाने वाले बुद्ध ने पशु-पक्षी वध या माँसाहार को क्यों नहीं रोका। उत्तर स्पष्ट है कि यह गरीबों का भोजन था। अमीरों की तरह इन्हें पौष्टिक भोजन—घी, मक्खन, दूध, दही, मेवा फल उपलब्ध नहीं थे। ये चिड़िया, मछली आदि पर ही जीवित रहते थे। इसलिए बुद्ध ने यहाँ कड़े नियम नहीं लागू किए। बुद्ध ने तो भिक्षुओं के लिए भी कहा कि अतिथि के यहाँ उन्हें जो मिले खा लेना चाहिए, ताकि वे उन पर बोझ न बनें। अन्यथा बुद्ध तो पशुबलि आदि ही नहीं किसी भी जीव को हानि पहुँचाने को हिंसा मानते थे। बौद्ध धर्म में जीवों का वध अहिंसा के अन्तर्गत नहीं रखा गया है बल्कि हमारे मन को पतन के गर्त में ले जाने वाले जो विकार हैं, उन विकारों को मिटाना ही वास्तविक अहिंसा है, जिससे आत्मभाव की भली-भाँति रक्षा हो सके। बौद्धधर्म में अहिंसा तकनीकी शब्द नहीं है जैसा कि हिन्दू और जैन धर्म में है। इन दोनों धर्मों में अहिंसा धार्मिक त्याग है जबकि बौद्ध धर्म में नैतिक संहिता।

बौद्ध धर्म के प्रचारकों ने धार्मिक प्रचार के लिए कठिन प्रयत्न किए। विश्व के इतिहास में किसी भी महापुरुष के अनुयायियों ने अपने गुरू के आदेश के पालन में इतना उत्साह, इतनी तत्परता तथा इतना त्याग नहीं प्रदर्शित किया जितना बुद्ध के अनुयायियों ने किया। चूंकि यह समाज-सुधार आन्दोलन का भी प्रयास था इसलिए सुदूर जंगलों, दुर्गम पहाड़ों में भी चलकर प्रचार-प्रसार किया। लंका, जापान, जावा, सुमात्रा, चीन आदि देशों तक अहिंसा और बौद्धधर्म के पवित्र सिद्धान्तों के संदेशों को पहुँचाया। सम्राट अशोक की महानता के किस्से इतिहास में इसीलिए प्रसिद्ध हैं कि उन्होंने कलिंग युद्ध के भीषण रक्तपात और हिंसा के बाद युद्ध का रास्ता छोड़ अहिंसा और बौद्धधर्म को अपना लिया। विचारों के प्रसार का एक उदाहरण यह भी दिया जा सकता है कि आधुनिक काल में जयशंकर प्रसाद ने अशोक के कलिंग विजय की उस घटना पर एक महत्वपूर्ण कविता 'अशोक की चिन्ता' लिखी। कहानी, कविता, उपन्यास आदि भी किसी विचार को प्रेरित करते हैं, फैलाते हैं। (गाँधी के विचारों को प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आगे बढ़ाया है।)

उस दौर के सभी ताकतवर और महान राजा बिम्बिसार, अशोक, प्रसेनजित, चण्डप्रद्योत, उदयन, कनिष्क, हर्षवर्धन आदि ने न सिर्फ इस धर्म को अपनाया, राजाश्रय प्रदान किया बल्कि उच्चतर मूल्यों से नवाज़ा और प्रचार-प्रसार में राजकीय संरक्षण प्रदान किया तथा आवश्यक धन मुहैया कराया। अशोक ने तो प्रचार-प्रसार का जाल बिछा दिया था। उस दौर में सीरिया और पश्चिमी के राजा अंतियोफ थियोस, मिस्र के राजा तुरमय द्वितीय फिलाडेल्फस, मकदूनियां के अंतिकिन, साइरीन के राजा मग और एपिरस के राजा सिकन्दर तक यह प्रचार पहुँचा था। अशोक ने जगह-जगह पर शिलालेखों में पशुवध का निषेध लिखवाया, खुदवाया। हिंसक यज्ञों को रुकवाया, माँसभक्षण और चट्टानों, स्तम्भों और गुफाओं पर भी अहिंसा और बौद्धधर्म के मूल तत्वों, विचारों को अंकित करवाया। उस दौर के जनकल्याण कार्यक्रम इन विचारों से गहरे जुड़े और संचालित थे। उन दिनों नालन्दा विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म और दर्शन का विश्वविख्यात केन्द्र था। जहाँ विदेशी तक ज्ञानार्जन के लिए आते थे और अपने साथ अहिंसा का पाठ ले जाते थे और प्रचारित-प्रसारित करते थे।

जैन और बौद्ध धर्म की तरह ही पारसी, यहूदी, ईसाई आदि धर्मो में भी अहिंसा को उच्चतर स्थान प्राप्त है। अवेस्ता के अनुसार आदमी के तीन प्रमुख कर्तव्य हैं - 1. अपने शत्रु को मित्र बना लेना 2. दानव को मानव बनाना या दानव प्रवृत्ति रखनेवालों के भीतर मानवी प्रवृत्ति भर देना 3. अज्ञानी को ज्ञानी बनाना। यहाँ हम देख सकते हैं कि शत्रु को मित्र बनाना निस्संदेह अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित है। पारसी परम्परा के अनुसार सद्कर्म करना, मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना, दूसरों का भला सोचना, सत्य बोलना, दान देना, दयावान एवं विनम्र होना, ज्ञान प्राप्त करना, क्रोध को वश में करना, पवित्र बनना, माता-पिता, शिक्षक, वृद्ध, व्यस्क लोगों के प्रति आदर का भाव रखना, आनन्ददायक मधुर वचन बोलना, धैर्य रखना, सबके प्रति मैत्री भाव रखना, संतोष करना, अयोग्य कर्म पर लज्जित होना आदि बातें अहिंसा के विधेयात्मक रूप की पुष्टि करते हैं।

यहूदी धर्म के संत मूसा ने 'तू हत्या नहीं करेगा' कहकर जो आज्ञाएँ प्रस्तावित कीं वह अहिंसा की व्याख्या है। कन्फ्यूशियस धर्म तो गहरे रूप से बौद्ध धर्म से प्रभावित रहा है। इसलिए वहाँ अहिंसा की छाप को आसानी से परिलक्षित किया जा सकता है। चीन में मोत्सु नाम के संत ने अहिंसा का खूब प्रचार-प्रसार किया था। गाँधीजी चीन की प्रशंसा इसलिए करते थे क्योंकि उसका लम्बा इतिहास शांतिप्रिय, अहिंसक समाज का रहा है। यूनान में प्राचीन समय से ही अहिंसा का प्रचार-प्रसार था। ई.पू. 7वीं शताब्दी के लगभग शैलमोशिस और पिथागोरस ने अहिंसा का प्रचार-प्रसार किया था। शैलमोशिस तो जैन धर्म के बहुत नजदीक था। पिथागोरस ने माँसभक्षण का विरोध किया था। प्लेटो, डियोजेनेस आदि ने भी अहिंसा का प्रचार-प्रसार किया। अपोलो तथा दमस भी भारत आए और यहाँ से जाकर यूनान को अहिंसा का पाठ पढ़ाया। वहाँ अहिंसा का सक्रिय प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म में प्रेम को अहिंसा और अहिंसा को प्रेम माना गया है। शत्रु को प्रेम करो, जो बुरा करे उसका भला करो — ये सब विचार अहिंसा समर्थित हैं। गाँधी ईसाई धर्म से गहरे प्रभावित थे। वे ईसा मसीह को सत्याग्रहियों का राजकुमार कहते थे। मध्यकालीन भारत में कबीर, नानक एवं अन्य सूफी संतों, कवियों ने अहिंसा पर बहुत बल दिया है।

आधुनिक काल में राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और गाँधी अहिंसा के प्रस्तावक थे। आधुनिक काल में अहिंसा को सबसे ऊंचाई पर गाँधी ने पहुँचाया। वे दो विश्वयुद्धों के साक्षी रहे हैं। उनका मानना था कि राष्ट्रों के बीच की समस्याएँ शांति और अहिंसा के बगैर सम्भव नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध उसी पर टिके हैं। वे मानते थे कि युद्ध का स्थगन अहिंसा नहीं है बल्कि 'वैश्विक न्याय' ही शांति और अहिंसा है। गांधी ने अहिंसा को जीवन के हर पहलू से जोड़ा और आम जनमानस में लोकप्रिय बनाया। गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलन की विशेषता यह है कि उन्होंने इसे राजनीतिक पदावली की तरह इस्तेमाल किया। पूरी दुनिया में अपने उपनिवेश फैला चुके इंग्लैंड की साम्राज्यवादी ताकत को गाँधी ने अहिंसक आन्दोलन से करारा जबाब दिया। अहिंसात्मक सत्याग्रह को दक्षिण अफ्रीका से शुरू कर गाँधी ने भारत ही नहीं पूरी दुनिया में लोकप्रिय बनाया। शत्रु के साथ भी मित्र की तरह व्यवहार करके उन्होंने दुनिया को कायल किया। अनेक किस्म के नागरिक अधिकारों की उत्पत्ति इसी विचारधारा की आधारशिला पर रखी गई।

गाँधी के अहिंसा सम्बन्धी विचार अनेक धर्मग्रंथों, विचारकों और पुस्तकों के ऋणी हैं। जैसा कि विश्वनाथ नरवणे ने लिखा है कि जैन धर्म, बौद्ध धर्म के ग्रंथ, भगवद्‌गीता, के अलावा उपनिषदों के अंग्रेजी अनुवाद, वाशिंगटन इरविंग की लाइट ऑफ मुहम्मद, सेविंग्स ऑफ जरथुस्ट्र, कुरान का सेल्स द्वारा अनुवाद, एडविन आर्नल्ड का लाइट ऑफ एशिया, एनी बेसंट की हाउ आइ बिकेम ए थियोसॉफिस्ट, रस्किन की अंटु दिस लास्ट, कार्लाइल की हीरोज एण्ड हीरोवर्शिप आदि रचनाओं का जबरदस्त प्रभाव पड़ा। गाँधी तोलस्ताय की रचना 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' से भी गहरे प्रभावित थे। अनेक लोगों का मानना है कि गाँधी की अहिंसा काफी हद तक तोलस्तॉय से प्रभावित है। थोरो से गाँधी ने सीखा कि अहिंसा का राजनीतिक इस्तेमाल किया जा सकता है।

गाँधी ने सत्य, अहिंसा और प्रेम को एक साथ जोड़ दिया। वे बार-बार इसकी अविच्छिन्नता पर बल देते थे। गाँधी ने ही अहिंसा के सिद्धान्त की नकारात्मक अवधारणा को तोड़ा। वे अहिंसा को कर्म का दर्शन मानते थे। साथ ही उनके लिए अहिंसा कष्ट या दुख सहन की शक्ति का प्रकटन भी है। अहिंसा मनुष्य को उदात्त बनाती है। वे मानते थे कि अहिंसा कमजोरों की नहीं शक्तिवान का शृंगार है। अहिंसा को गाँधी ने तरह-तरह से परिभाषित करने की कोशिश की है। वे लिखते हैं - 'अहिंसा परमश्रेष्ठ मानव धर्म है और पशुबल से वह अनन्त गुना महान और उच्च है'। या 'मन, वचन और शरीर से किसी जीव को दुख न देना, अपना या दूसरे का भला मानकर भी किसी जीव को दुख न देना अहिंसा है'। यहाँ हम देख सकते हैं कि गाँधी ने पुराने धर्मग्रंथों के उदाहरण को ही प्रस्तुत किया है। वे एक जगह लिखते हैं - जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वत्र न्यायपूर्ण व्यवहार ही अहिंसा है। वे भली भांति जानते थे कि अहिंसा ही समाज को आगे ले जाएगी। वे लिखते हैं - 'इतिहास सतत युद्धों का एक लेखा है, पर हम नया इतिहास बनाने की कोशिश कर रहे हैं। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि जहाँ तक अहिंसा का सवाल है मैं राष्ट्रीय मानस का प्रतिनिधित्व करता हूँ। तलवार के सिद्धान्त को मैंने खूब सोच विचार करने के बाद छोड़ा है। उसकी संभावनाओं का मैंने हिसाब लगाया है, और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जंगल के कानून की जगह, प्रबुद्ध प्रेम के कानून की स्थापना ही मनुष्य की नियति है'।

गाँधी ने समय-समय पर अहिंसा सम्बन्धी अपने मत को, विचारों को पत्र-पत्रिकाओं, लेखों, मौखिक संवादों, वार्ताओं, सम्मेलनों, प्रार्थना सभाओं के जरिए लोगों तक पहुँचाया जिसका असर यह रहा कि भारत ही नहीं पूरी दुनिया में इसका प्रभाव पड़ा। अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग ने अश्वेतों के सम्मान और अधिकारों की लड़ाई गाँधी से प्रभावित होकर लड़ी। दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला ने अहिंसक तरीके से अश्वेतों की लड़ाई लड़ी। वे वहाँ के राष्ट्रपति भी बने। आज अमेरिका या अफ्रीका में अश्वेत राष्ट्रपति हैं तो इसमें कहीं न कहीं गाँधी के अहिंसक आन्दोलन की पृष्ठभूमि भी है। म्यांमार की निरंकुश सत्ता के खिलाफ आन सांग सू की लम्बी लड़ाई अहिंसक तरीके से चल रही है। आज जहाँ कहीं भी अहिंसक तरीके से असहयोग करने या धरना प्रदर्शन करने या आन्दोलन चलाने की बात होती है या की जाती है तो उसमें कहीं न कहीं गाँधी की वैचारिक प्रतिबद्धता एवं प्रासंगिकता की झलक मिलती है। अगर हम विश्वशांति के आधारभूत सिद्धान्त को देखें तो पता चलता है कि उस पर गाँधी के अहिंसक आन्दोलन का प्रभाव है। मसलन - निःशस्त्रीकरण, तनाव शैथिल्य, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और विश्वबन्धुत्व, युद्ध विरोध और जनजागृति, विश्व शांति सेना का विकास एवं गठन।

जिस प्रकार हमने समाज में एक विचार के विकास या उसकी यात्रा के तौर पर अहिंसा को जाना उसी प्रकार साम्यवाद और समाजवाद को भी जान सकते हैं। दर्शन के क्षेत्र में विचारों की लम्बी फेहरिस्त है। लेकिन फिलहाल हम थोड़ी चर्चा डार्विन और न्यूटन के सन्दर्भ में भी कर लें।

7.2.2 डार्विनवादः क्रमिक विकास का सिद्धान्त

आधुनिक समाज, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, भूगोल, नृविज्ञान, राजनीतिशास्त्र आदि को सबसे गहरे जिस विचार ने प्रभावित किया, वह डार्विन का विकासवाद का सिद्धान्त है। चार्ल्स डार्विन को आधुनिक प्राणिशास्त्र का जनक कहा जाता है। उन्होंने 'क्रमिक विकास का सिद्धान्त' देकर दुनिया के सारे शास्त्रों की रूपरेखा ही बदल डाली। जब कभी हम लिखते या पढ़ते हैं - भारतीय राजनीतिशास्त्र का विकास, दर्शन या धर्मशास्त्र का विकास, हिन्दी साहित्य का विकास, अंग्रेजी साहित्य का विकास या जीवविज्ञान का विकास तो डार्विन के सिद्धान्त या विचार को ही आगे बढ़ा रहे होते हैं। अब इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि डार्विन के सिद्धान्त या विचार का कितना गहरा प्रभाव समाज पर पड़ा है।

डार्विन ने लम्बे समय तक दुनिया के अलग-अलग हिस्से, भू-भाग एवं वातावरण में जाकर शोध किया और 1859 ई. में 'द ओरिजिन ऑफ स्पेसीज' (जीवधारियों का जन्म और विकास) नाम की महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी। इस पुस्तक के प्रकाशन ने अब तक की चली आ रही तमाम मान्यताओं को ध्वस्त कर दिया। तमाम पुरातन विचारों, वैज्ञानिकों और धर्मशास्त्रियों की अवधारणाओं एवं चिन्तन का खण्डन इसमें मौजूद था। डार्विन ने क्रांतिकारी स्थापना यह दी कि मनुष्य लंगूर की संतान है। यानी उन्होंने पहली बार साबित किया कि मनुष्य ईश्वरीय देन नहीं है। उन्होंने यह घोषणा की, कि मनुष्य पृथ्वी के अन्य जीवधारियों का ही विकसित रूप है, और 'इवोल्यूशन' अर्थात क्रमिक विकास द्वारा ही वह हजारों शताब्दियों में 'एमिबा' के कीड़े से समुद्री मछली, समुद्री मछली से समुद्री जानवर, फिर पृथ्वी पर रहने वाला जानवर, फिर लंगूर और अन्त में मनुष्य बना है। पहले क्रमिक विकास के इस सिद्धान्त की जानकारी लोगों को न थी। डार्विन ने महज दो वाक्यों में अपने महान सिद्धान्तों का सार प्रस्तुत किया था। उनका कहना था 'स्थान और समय के भेद से जीवधारी अपना शारीरिक-मानसिक विकास करते हैं। विकास के इस आन्दोलन में शक्ति की ही विजय होती है (सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट)। शायद विचारों की दुनिया में इससे बड़ी घटना और स्थापना कोई और नहीं है। पुस्तक का ब्लर्ब बताता है कि इसका प्रथम संस्करण उसी दिन बिक गया जिस दिन छपा। यह और बात है कि शुरू में धार्मिक पुरोहितों, पादरियों और विद्वानों वैज्ञानिकों ने पुरजोर विरोध किया। पुस्तक छपने पर इंगलैण्ड के सभी अखबारों में विरोध हुआ था। इसे धर्म - विरोधी और शास्त्र विरोधी साबित किया गया। कई बार ताकतवर विरोध भी किसी व्यक्ति या विचार को लोकप्रिय बना देता है। प्रोफेसर हक्सले ने डार्विन का साथ दिया अन्यथा चौतरफा विरोध हो रहा था। अन्ततः विचार-विमर्श के लिए ऑक्सफोर्ड में वैज्ञानिकों और विद्वानों की एक सभा बुलाई गई। यह और बात है कि वहाँ काफी भगदड़ मच गई लेकिन डार्विन का विचार मान्यता पा गया।

7.2.3 न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त

हम जानते हैं कि सर्वप्रथम न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की खोज की। उन्होंने हमें बताया कि ऊपर की तरफ फेंकी गई कोई भी वस्तु वापस पृथ्वी पर गिरती है क्योंकि पृथ्वी में चुम्बकीय शक्ति है। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति है। न्यूटन ने अपनी यह स्थापना पूर्ववर्ती तमाम स्थापनाओं से असहमति जताते हुए दी। जब न्यूटन ने यह सिद्धान्त दिया तब उन्हें काफी विरोध सहना पड़ा था। लेकिन बाद में न्यूटन के इस विचार या खोज को पूरी दुनिया में स्वीकृति मिली। उनका सिद्धान्त दुनिया के तमाम देशों के स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा बना हुआ है। जीवन और प्रकृति की गतिविधियों को समझने में महत्वपूर्ण अनेक सिद्धान्तों में से एक न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त आज ज्ञान-विज्ञान के जगत में अहम स्थान रखता है। किसी एक देश की सीमा में उत्पन्न ऐसे उर्वर सिद्धान्त सीमाओं में बँधकर नहीं रहते अपितु अपने ज्ञान और प्रासंगिकता के आधार पर देश काल की सीमा लाँघ कर मनुष्य मात्र के विकास के लिए आवश्यक बन जाते हैं। संचार के विभिन्न माध्यमों द्वारा आज ये सिद्धान्त विश्व भर में प्रचलित हो रहे हैं। इंटरनेट, टी.वी. रेडियो तथा संचार के नवीनतम माध्यम इन विचारों के दायरे को बड़ा करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं जिसे बड़ी ही आसानी से हासिल किया जा सकता है।

7.3 समाज में विचारों का विकास एवं अनुवाद

समाज में विचारों के विकास या पल्लवन-पुष्पन में अनुवाद की भूमिका असंदिग्ध है। आज इंटरनेट से जो भी पश्चिमी विचार हमारे पास आ रहे हैं वे सब अनुवाद के माध्यम से सम्भव हो रहे हैं। किसी दूसरी भाषा में लिखित ज्ञान या विचार हम तब तक हासिल नहीं कर सकते जब तक वह मूल भाषा हमें न आती हो या उसका अनुवाद हमारी भाषा में उपलब्ध न हो। कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद - समाजवाद का दर्शन मूल जर्मन में लिखा था। आज 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' दुनिया की सभी भाषाओं में अनुदित है। अगर इसका अनुवाद उपलब्ध न होता तो क्या यह दर्शन लगभग सौ से ज्यादा वर्षो तक बहस का विषय बना रह सकता था? दुनिया के तमाम चिन्तक, विचारक, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, दार्शनिक, साहित्यकार, कलाविद या तो इस दर्शन के पक्ष में रहे या विपक्ष में। इसका मूल कारण सिर्फ इस दर्शन का मूल विषय नहीं बल्कि उपलब्धता भी है। इसका अनुवाद अंग्रेजी, हिन्दी, पोलिश, इतालवी, रूसी, फ्रेंच, उर्दू, अरबी, फारसी आदि तमाम भाषाओं में उपलब्ध है जिसका जिक्र घोषणापत्र में भी पढ़ा जा सकता है। इंटरनेट पर विकिपीडिया में जाकर खोजें तो आप पाएंगे कि यह तमाम भाषाओं में उपलब्ध है।

इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि गाँधी की पुस्तक 'हिन्द स्वराज' जो आधुनिक विश्व की सभ्यता समीक्षा मानी जाती है और जिसकी प्रासंगिकता पर पूरी दुनिया में बहस चल रही है या किसी न किसी रूप में चर्चा का विषय बनी हुई है तो उसका कारण भी अनुदित रूप में उसकी उपलब्धता है। गाँधी ने इस पुस्तिका को मूल गुजराती में लिखा था। लेकिन जैसे ही इसका अनुवाद हिन्दी और अंग्रेजी में हुआ, पुस्तक बहस के केन्द्र में आ गई।

ऊपर हमने अहिंसा की चर्चा की है। भारतीय सन्दर्भ में देखें तो पता चलता है कि अहिंसा का विचार पहले संस्कृत ग्रंथों में उपलब्ध है बाद में पाली, प्राकृत, अपभ्रंश होते हुए लोकभाषा में उपलब्ध होता है फिर हिन्दी में। हम ऊपर पढ़ आए हैं कि अनेक विदेशी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आए और अपने साथ अहिंसा का विचार समेटकर ले गए तथा अपने देश में अपनी भाषा में उसका प्रचार प्रसार किया। क्या विचारों की यह यात्रा अनुवाद के बगैर सम्भव थी? इसलिए हम कह सकते हैं कि समाज में किसी भी विचार या दर्शन के फैलाव, संरक्षण, प्रचार प्रसार में अनुवाद की महती भूमिका है।

7.4 सारांश

आपने इस अध्याय में जाना कि समाज में विचारों के प्रचार-प्रसार एवं सम्प्रेषण में अनुवाद की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। दुनिया के तमाम महान विचार अनुवाद के माध्यम से ही लोगों तक पहुँचे हैं। चाहे गाँधीवाद हो, मार्क्सवाद, विकासवाद या फासीवाद। आज भी देरिदा, फूको, नोम चोम्सकी आदि के विचार अनुदित होकर ही हम तक पहुँचते हैं। अंग्रेजी पढ़ने, समझने वालों की संख्या काफी बड़ी है। इसे मूल रूप में जाननेवाले हैं। लेकिन चीनी, जापानी, जर्मन, इतालवी, पोलिश, फ्रेंच समेत अन्य भाषाएँ जानने वालों की संख्या भारत में काफी कम हैं। ऐसे में वहाँ का सारा ज्ञान हम तक अनुवाद के माध्यम से पहुँचता है। भारत में औपनिवेशिक दौर में पश्चिम का सारा ज्ञान अनुवाद द्वारा ही पहुँचा था। मैक्समूलर ने भारतीय संस्कृति जानने के लिए पहले संस्कृत सीखी फिर उसे मूल जर्मन में लिखा। बाद में मैक्समूलर का वही विचार हम तक अनुवाद के जरिए पहुँचा। कन्नड़, बांग्ला, तमिल, तेलुगु या मलयालम की ज्यादातर रचनाएँ हिन्दी भाषी लोग अनुवाद के जरिए ही पढ़ते हैं। यही बातें अन्यों पर भी लागू होती हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि विचारों की यात्रा में अनुवाद की भूमिका सर्वोपरि है।

7.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) विचारों के विकास के महत्वपूर्ण घटक कौन-कौन से हैं? बताइए।
2) अहिंसा के सन्दर्भ में गाँधी के विचारों का उल्लेख कीजिए। इसमें अनुवाद की भूमिका भी प्रकाश डालिए।
3) डार्विन के क्रमिक विकास के सिद्धान्त के विषय में चर्चा कीजिए।
4) विचारों के विकास में अनुवाद की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

7.6 शब्द सूची

- **अवदान** - उज्ज्वल कर्म
- **अस्तेय** - चोरी न करना
- **अपरिग्रह** - त्याग, किसी से कुछ न ग्रहण करना
- **अवधारणा** - कल्पना या विचार का उदय
- **अनुमोदन** - समर्थन, स्वीकृति
- **अक्लेश** - क्लेश रहित
- **कर्मणा** - कर्म से
- **सार्वकालिक** - सब समयों के लिए उपयुक्त
- **सार्वभौमिक** - सारी पृथ्वी पर फैला हुआ
- **अहिंसा** - चोट न पहुँचाना, हत्या न करना
- **व्यापक** - विस्तार
- **प्रोक्ता** - कहनेवाला
- **परिमार्जन** - साफ करना

7.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Darwin, Charles; The Origin of Species, Newyork, Bentuen Books.
- Holmes, Robert L., Nonviolence in Theory.
- Greg, R.B.; The Power of Nonviolence, Newyork.
- द ओरिजिन ऑफ स्पेसीज, चार्ल्स डार्विन, बैंटम बुक्स, न्यूयार्क नॉनवायलेंस इन थियरी एण्ड प्रैक्टिस रॉबर्ट एल. होम्स, बॉरी एल. गा द पावर ऑफ नॉनवायलेंस, आर.बी. ग्रेग, कोकेन, न्यूयार्क
- Bishap, P.D.; A Technique for Living : Nonviolence in Indian and Christian Traditions; London, SCM.

  बिशप, पी.डी., ए टेक्नीक फॉर लिविंग : नॉनवायलेंस इन इंडियन एण्ड क्रिस्टीयन ट्रेडिशन्स, लंदन, एस.सी. एम.।
- भारतीय दर्शन, डा. राधाकृष्ण, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली
- गांधी, मोहनदास करमचंद; सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (खण्ड 48, 50, 62, 65, 66, 67, 70) दिल्ली, गाँधी संग्रहालय।
- मार्क्स, एंगेल्स; कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, लखनऊ, राहुल फाउण्डेशन।
- नरवणे, विश्वनाथ; आधुनिक भारतीय चिन्तन, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
- सिंह, अलख नारायण; भारतीय इतिहास में अहिंसा, वाराणसी, पुष्पाजंलि प्रकाशन।
- राधाकृष्ण, डॉ.; भारतीय दर्शन, दिल्ली, राजपाल एंड संज।
- भार्गन, लेविस हेनरी; प्राचीन समाज, दिल्ली, प्रकाशन संस्थान।

इकाई 8 विचारों का सार्वभौमीकरण एवं अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं अनुवाद

8.3 विचारों का उद्‌भव एवं धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद - बाइबल, बौद्ध ग्रंथ, उपनिषद् एवं भगवद्‌गीता

8.3.1 बौद्ध धर्म एवं अनुवाद

8.3.2 भगवद्‌गीता एवं पश्चिम के साहित्यिक आन्दोलन

8.4 अहिंसा और गाँधीवाद

8.5 साम्राज्यवाद एवं प्राच्यवाद

8.6 मानवतावाद का अनुवाद पर प्रभाव

8.7 भारतीय साहित्य में नवजागरण

8.8 विश्व-साहित्य में अनुवाद की भूमिका - मार्क्सवादी प्रभाव

8.9 सारांश

8.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- विचारों तथा उसमें अनुवाद की भूमिका की जाँच कर सकेंगे;
- व्यक्ति और संस्कृति के बीच के सम्बन्ध को समझ सकेंगे;
- विचारों का विकास किस प्रकार हुआ यह समझ सकेंगे; और
- अनुवाद के माध्यम से विचारों का वहन एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में किस प्रकार हुआ, यह समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं विचारों की यात्रा केवल विचारों के आन्तरिक महत्व, सम्प्रेषण के आधुनिक साधनों और अनुयायियों की ग्रहणशीलता पर ही नहीं, बल्कि भाषा और अनुवाद पर भी निर्भर करती है। विचारों का विकास मूलतः खोज, धर्म, स्वीकार्यता, माध्यम और भाषा से सम्बन्धित है और ये विचार अनुवाद, प्रिंट मीडिया, इलैक्ट्रॉनिक मीडिया और इंटरनेट के माध्यम से फैलते हैं। इसके विपरीत ये विचार रचना खण्डों की तरह विचारों के इतिहास का निर्माण करते हैं; हालांकि इस दौरान ये सापेक्षिक रूप से अपरिवर्तित रहते हैं। विचारों की इकाइयाँ नए ढाँचों में पुनः जुड़ती हैं और अनुवाद के माध्यम से विभिन्न ऐतिहासिक युगों में नए रूपों में अभिव्यक्त होती हैं। गाँधीवाद, मार्क्सवाद, डार्विनवाद और मानवतावाद का सम्पूर्ण विश्व में प्रसार हुआ क्योंकि उनका अनुवाद कई भाषाओं में हुआ। उदाहरण के लिए, मार्क्सवाद के सिद्धान्तों एवं दर्शन की व्याख्या जर्मन में हुई, परन्तु पूरे विश्व में उनका प्रसार अनुवाद के माध्यम से ही हुआ। संक्षेप में, अनुवाद किसी विचार के विकास, प्रसिद्धि एवं प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस पाठ में हमारा उद्देश्य इस तरह के सौर्वभौमिक विचारों की पहचान करना तथा उनके ऐतिहासिक उद्‌भव एवं नए रूप एवं संयोजन में प्रत्यावर्तन का वर्णन करना है।

8.2 अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं अनुवाद

विचारों का जन्म कैसे होता है, वे किस प्रकार फैलते हैं तथा विचारों, व्यक्ति और समाज में क्या सम्बन्ध है, समाज में विचारों की पहचान कैसे होती है, और विचारों के प्रसार में अनुवाद की क्या भूमिका है - इस तरह के कई प्रश्न हैं। विचारों का आरम्भ कई घटकों पर निर्भर करता है लेकिन इनके प्रसार में अनुवाद की भूमिका निर्णायक है। अनुवाद के द्वारा हम उन सूचनाओं तक पहुँच सकते हैं जो अन्यथा किसी विदेशी भाषा में ही सीमित रहते। अनुवाद के अभाव में सूचनाएँ उन लोगों तक नहीं पहुँच सकतीं जो मूलभाषा से परिचित नहीं हैं। अनुवाद की यही सक्षम भूमिका इसे महत्वपूर्ण बनाती है।

अनुवाद की समस्या काफी हद तक आधुनिकता की आलोचना और विचारों के सार्वभौमीकरण की प्रक्रिया पर केन्द्रित हो गई है। अनुवाद को महज भाषिक या साहित्यिक विषय के तौर पर देखने के बजाय इसे व्यक्तियों और सभ्यताओं के बीच एक प्रतीकात्मक तथा भौतिक आदान-प्रदान के तौर पर प्रयोग करने से अनुवाद की रूपात्मकता में विस्तार होता है जो अन्तर्सांस्कृतिक आदान-प्रदान को विस्तार देता है। इससे भाषा और अनुवाद-कार्य में नई संभावनाएँ उत्पन्न हुईं।

पारस्परिक व्यवहार या अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण के माध्यम से हमेशा विचारों का अन्तरण हुआ है। यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि कोई विचार या सिद्धान्त दुनिया के किसी भी भाग में शुरू हुआ हो, पर इसका प्रभाव दूसरे स्थानों पर भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, कई बड़ी राष्ट्रीय साहित्यिक परम्पराएँ सीमा पार के कुछ अन्य साहित्यिक आन्दोलनों से फली-फूली और प्रभावित हुई हैं। विचारों के सबसे बड़े प्रवर्तकों ने हमेशा दूसरी संस्कृतियों और भाषाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। मसलन, गेटे, संस्कृत के महाकवि कालिदास और फारसी कवि हाफिज की रचनाओं के प्रशंसक रहे हैं। यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि पूर्व और पश्चिम में सांस्कृतिक आदान-प्रदान के द्विपक्षीय प्रवाह के कारण ही विश्व में महान साहित्य का जन्म हुआ। संस्कृति और समाज का विकास, वस्तुतः विचारों का उद्भव और विकास है।

8.3 विचारों का उद्भव एवं धार्मिक ग्रंथों का अुनवाद – बाइबल, बौद्ध ग्रंथ, उपनिषद् एवं भ्गवद्गीता

अनुवाद का विषय बाइबल के कुछ रोचक प्रसंगों से जुड़ा है। बाइबल के उत्पत्ति ग्रंथ में वर्णित बेबल की मीनार की कथा के अनुसार, बाढ़ के बाद नूह के वंशजों ने शीनार के समतल क्षेत्र में बसने का फैसला किया। वहाँ उन्होंने ईश्वर को चुनौती देने का पाप किया और एक ऐसी मीनार बनाई जो स्वर्ग तक पहुँच सके। हालांकि उनकी यह योजना पूरी नहीं हो पाई क्योंकि ईश्वर ने भाषिक अनुवाद की कमी की शक्ति को समझते हुए उन्हें अलग-अलग भाषा बोलने के लिए दी जिससे वे एक दूसरे को न समझ सकें। उसके बाद ईश्वर ने उन्हें पूरी दुनिया में फैला दिया। इसके बाद, जैसे-जैसे जातियाँ फैलती गईं, भाषाओं की संख्या बढ़ती गई और लोग सम्प्रेषण के नए-नए तरीके ढूँढने लगे। इसी के परिणामस्वरूप अनुवाद का जन्म हुआ।

हमारे लिए यह समझना आवश्यक है कि अनुवाद धर्म के प्रचार-प्रसार का एक आवश्यक साधन बना। जब किसी धर्म के अनुयायियों को किसी विषमभाषी समुदाय में अपने धर्म का प्रचार करने की इच्छा हुई तो उन्हें अनुवाद की जरूरत महसूस हुई। अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार, अनुवाद का इतिहास रोमन युग से प्रारम्भ होता है। एरिक जैकबसन का दावा है कि अनुवाद एक रोमन आविष्कार है। सिसेरो और होरेस (पहली सदी ई.पू.) पहले ऐसे सिद्धान्तकार थे जिन्होंने शाब्दिक अनुवाद और अर्थ अनुवाद में अन्तर किया। ईसाई धर्म के विकास में सबसे बड़ा कार्य तब हुआ जब पोप डेमेसस (366-384 ई.) ने एक ईसाई संत एवं बाइबल के विद्वान सन्त जेरोम (340-420 ई.) को 'नया नियम' (बाइबल का दूसरा भाग) को हिब्रू से लोकप्रिय और असाहित्यिक लैटिन (वल्गेट-बाइबल का लैटिन अनुवाद) में अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया। 'पुराना नियम' को भी यूनानी भाषा में अनूदित किया गया जिसे 'Septuagint' (सत्तर) कहा गया क्योंकि यह सत्तर विद्वानों द्वारा पूरा किया गया।

ऑक्सफोर्ड के प्रसिद्ध **धर्मशास्त्री** जॉन वाइक्लिफ ने 1380-84 के दौरान सम्पूर्ण बाइबल का अंग्रेजी में अनुवाद किया। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति तक बाइबल की पहुँच उसी की भाषा में होनी चाहिए क्योंकि मनुष्य ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है और बाइबल का पथ ही ईश्वर का नियम है। वाइक्लिफ का आशय आम लोगों और ईश्वर के बीच पोप, आर्क बिशप, बिशप आदि के दमनकारी हस्तक्षेप का विरोध करना था, इस कारण धार्मिक संस्थाओं के साथ उनका विवाद हुआ।

बाइबल के अनुवादों ने जिस विवाद की शुरुआत की उसे 16वीं सदी के सुधार-आन्दोलन ने और भी तीव्र बना दिया। उस समय अनुवाद को धार्मिक सिद्धान्तों और राजनीतिक संघर्षों के साधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाने लगा। राष्ट्र-राज्यों का उद्‌भव होने लगा, चर्च के केन्द्रीकरण तथा लैटिन का वैश्विक भाषा के तौर पर पतन होने लगा था। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि मध्यकाल में चर्च ने लोगों को अपनी भाषा में बाइबल पढ़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। जर्मन धर्मशास्त्री, लेखक तथा सुधार-आन्दोलन के नेता मार्टिन लूथर (1483-1546) ने बाइबल का जर्मन में अनुवाद किया तथा इसे रोमन पादरी के खिलाफ प्रोटेस्टेंट आन्दोलन के सैद्धान्तिक हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया। लूथर ने कहा कि लोग सिर्फ अपनी भाषा के माध्यम से धार्मिक पुस्तकों को समझ सकते हैं। डच धर्मशास्त्री, विद्वान एवं लेखक इरेसमस (1466-1536) ने प्रथम यूनानी 'नए नियम' को 1516 में प्रकाशित किया और यह संस्करण बाद में लूथर के जर्मन संस्करण (1522) का आधार बना।

सुधार-आन्दोलन के विरोध स्वरूप जो आन्दोलन हुआ, उसमें चर्च के वर्चस्ववादी कार्यों यथा - राज्य प्रशासन, अर्थव्यवस्था, धर्म आदि मामलों में सुधार की मांग की गईं यह मुख्यतः राजाओं और राजकुमारों का पोप, बिशप और इस प्रकार के अन्य अधिकारियों के खिलाफ किया गया आन्दोलन था। जर्मन किसान वर्ग के क्रांतिकारी नेता ने सुधार-आन्दोलन के समय एक अनुवाद का प्रवर्तन (आयोजन) किया था जो लैटिन शब्दावली से रहित था, तथा इसे पूरी तरह से किसानों के लिए पढ़ा गया था। आरम्भिक सुधारवादी जर्मन धर्मशास्त्री थॉमस मुंत्जर (1488-1525) ने 'नया नियम' को न केवल कैथोलिक पादरियों बल्कि किसानों पर अत्याचार करने वाले सॅक्सोनी-राजाओं के खिलाफ भी सैद्धान्तिक हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया।

अनुवाद को विरोधी सामाजिक वर्गों में एक सैद्धान्तिक हथियार के तौर पर किस प्रकार इस्तेमाल किया गया इसके कुछ उदाहरण अन्य यूरोपीयन देशों से भी लिए जा सकते हैं। इंग्लैण्ड में धार्मिक सुधारक विलियम टिनडेल ने 1525 में 'नया नियम' का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। किन्तु इस अनुवाद को 1526 में कैथोलिक चर्च अधिकारियों द्वारा सार्वजनिक रूप से जला दिया गया। टिनडेल ने 'नया नियम' को यूनानी से तथा 'पुराना नियम' को हिब्रू से अनूदित किया था। 1536 में अधिकारियों ने टिनडेल को खूँटे पर जिन्दा जला दिया। इसी तरह, फ्रैंच मानवतावादी आइटेन डोलेट (1509-46) को प्लेटो के डायलॉग (Dialogues) का अनुवाद करने के लिए कानूनी कार्रवाई में यह कहकर फँसाया गया कि उन्होंने अमरत्व के प्रति अविश्वास की धारणा व्यक्त की थी। उन्हें नास्तिक कहकर उनकी आलोचना की गई, सताया गया तथा 37 वर्श की कम उम्र में उनका गला घोंटकर उनकी पुस्तकों की प्रतियों के साथ ही शव को जला दिया गया।

17वीं सदी के आरम्भ (1611) में इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम ने विद्वानों को बाइबल के एक पाठ का अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया जो चर्च में पढ़ने के लिए अधिकृत हो सके। यह मानक अंग्रेजी बाइबल बनी तथा इसने अंग्रेजी भाषा और साहित्य पर काफी प्रभाव डाला।

8.3.1 बौद्ध धर्म एवं अनुवाद

बौद्ध धर्म का दुनिया भर में प्रचार-प्रसार अनुवाद की बदौलत काफी शीघ्रता से हुआ। राजदरबारों के घेरे के बाहर भी, बौद्ध धर्म दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचा जहाँ के लोग धर्म से अपरिचित थे, वे केवल लिखित पाठों के ज़रिए ही धर्म से परिचित हो सकते थे जिनका अनूदित होना आवश्यक था। अन्ततः धर्म को अपने धर्मान्तरण के प्रयासों में सफलता मिली क्योंकि यह स्थानीय सांस्कृतिक तथा धार्मिक परिवेश से आसानी से जुड़ गया। बौद्ध धर्म के विचारों और जातीय विशेषताओं को अन्तरित करने में अनुवाद ने मुख्य भूमिका निभाई।

बौद्ध धर्म का उद्‌भव छठी सदी पूर्व के अन्त में हुआ। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात उनके अनुयायियों ने उनकी शिक्षाओं को उत्तर भारत की सीमाओं से परे जाकर व्यापारिक मार्गों के ज़रिए पूर्व और पश्चिम में फैलाया। इसका प्रसार

बहुत तेजी से हुआ क्योंकि बौद्ध भिक्षुओं ने स्थानीय आस्थाओं को इच्छापूर्वक अपनाया और उन्हें बौद्ध आस्थाओं के साथ पिरोया। हालांकि, जब इन ग्रंथों का दूसरी भाषाओं में अनुवाद हुआ तब उनके अर्थ उन भाषाओं की सांस्कृतिक अवधारणाओं के अनुरूप बदल दिए गए।

ऐतिहासिक रूप से बौद्ध धर्म की जड़ें पहली सदी ई.पू. के उत्तरार्द्ध के प्राचीन भारत के धार्मिक विचार में निहित हैं। वह एक सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन का युग था क्योंकि उस समय वैदिक ब्राह्मणवाद के बलि और धार्मिक कर्मकाण्डों का विरोध हो रहा था। इसे कई नए धार्मिक और दार्शनिक समूहों और शिक्षाओं से चुनौती मिली जो ब्राह्मणवादी परम्परा से अलग हो चुके थे और वेदों तथा ब्राह्मणों की सत्ता को अस्वीकार कर चुके थे। इन्हें सामूहिक रूप से 'श्रमणास' कहा जाता है। वे पूरी तरह अवैदिक थे तथा इन्होंने नए सैद्धान्तिक हिन्दू विचारों को जन्म दिया। 'श्रमणास' में भी वही अवधारणात्मक शब्दावली थी - आत्मा, बुद्ध, धम्म, कर्म, निर्वाण, संसार और योग। इन्होंने हिन्दू धर्म के गूढ़ विचारों में काफी योगदान दिया।

मौर्य सम्राट अशोक से पहले भारत में बौद्ध धर्म का प्रसार धीमी गति से हुआ, परन्तु अशोक ने इस धर्म को संरक्षण दिया तथा स्वयं नवधर्मान्तरित की भूमिका निभाकर इसे दुनिया के कोने-कोने तक पहुँचाया। इस आश्रय के कारण कई स्तूपों का निर्माण हुआ तथा सम्राट ने अपने बेटों के नेतृत्व में राजदूतों को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए मौर्य साम्राज्य के अलावा आस-पास के क्षेत्रों में भी भेजा। उनका यह मिशन मौर्य साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी सीमा के पार अफगानिस्तान और मध्य एशिया के ईरानी-भाषी क्षेत्रों तथा दक्षिण में श्रीलंका के द्वीप तक भी फैला। अशोक ने दो मिशन विपरीत दिशाओं में भेजे, एक के कारण चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, दूसरे के कारण श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया के तटीय इलाकों में थेरावाद बौद्ध धर्म का उद्भव हुआ। अशोक की राजाज्ञाओं के अनुसार, दूतों को भारत के पश्चिम में विभिन्न देशों में धर्म के प्रचार के लिए भेजा गया, विशेषकर पड़ोस के सेल्यूसिड साम्राज्य के पूर्वी प्रान्तों में, और यहाँ तक कि मेडिटेरानियन (भूमध्य) के हेलेनिस्टिक साम्राज्य तक में भी।

निकटवर्ती क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के क्रमिक प्रसार के कारण नए जातीय समुदायों से इसका संपर्क हुआ तथा यह फारसी और यूनानी सभ्यता से भी प्रभावित हुआ। बौद्ध धर्म से अछूते रहे भारतीय प्रदेशों में भी इस धर्म का प्रभाव पड़ा। स्थानीय तथा क्षेत्रीय भाषाओं एवं संस्कृतियों में हुए विपुल अनुवादों ने इसकी संस्कृतियों के अनुकूल ढ़ल जाने वाली विशेषताओं को और बढ़ाया जिसने बौद्ध धर्म को काफी लाभ पहुँचाया। भारतीय यूनानी साम्राज्य के यूनानी-भाषी बौद्ध शासकों के उद्भव में तथा गाँधार की यूनानी-बौद्ध कला के विकास में इस समन्वयवादी परम्परा का जबर्दस्त प्रभाव देखा जा सकता है। एक यूनानी शासक मेनांडर को बौद्ध धर्मसूत्रों में अमर भी कर दिया गया है। तीसरी सदी ई.पू. में थेरावाद शाखा भारत के दक्षिण में श्रीलंका तक और फिर थाईलैण्ड, बर्मा और इंडोनेशिया में भी फैल गई। उत्तर में धर्मगुप्त शाखा कश्मीर, गाँधार और अफगानिस्तान तक फैली। ईसा की दूसरी सदी में महायान सूत्र इस सामान्य क्षेत्र से चीन उसके बाद कोरिया और जापान तक फैले और चीनी भाषा में अनूदित हुए।

यह याद रखना आवश्यक है कि अन्य धर्मों के विपरीत बौद्ध धर्म में कोई एक केन्द्रीय ग्रंथ नहीं है जिसका सार्वभौमिक रूप से सभी परम्पराओं द्वारा उल्लेख किया गया हो। थेरावाद बौद्ध धर्म के अनुयायी पवित्र ग्रंथों अर्थात् पाली-विधान (या धर्मसूत्र) को निर्णायक तथा प्रामाणिक मानते हैं जबकि महायान अपनी भक्ति और दर्शन का मुख्य आधार महायान सूत्र और उनके स्वयं के 'विनय' को मानते हैं। पाली सूत्र और अन्य धर्मग्रंथ एक दूसरे से गहराई से जुड़े हैं और अन्य शाखाओं द्वारा इन्हें 'आगम' कहा जाता है।

अन्ततः बौद्ध धर्म के आन्तरिक संघर्षों के कारण दो सम्प्रदाय – हीनयान और महायान बने। इनमें से जो बोधिसत्व को पूजते हैं तथा महायान सूत्रों को पढ़ते हैं उन्हें महायानी कहा जाता है जबकि जो ये सब नहीं करते उन्हें हीनयानी कहते हैं। हीनयान अपने सिद्धान्तों का कठोरता से पालन करने पर बल देता है जबकि महायान पहले के आगम ग्रंथों के अलावा कुछ नए महायान सूत्रों को भी अपनाता है। महायान सम्प्रदाय का आधारभूत सिद्धान्त सभी जीवों की मुक्ति की सम्भावना पर आधारित है और अन्य तरीके से मोक्ष प्राप्त करने की आज्ञा देकर धर्म की अभिव्यक्ति को सरलीकृत करता है। महायान के विचार और शिक्षाओं को दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचाने में अनुवाद ने काफी सहारा दिया। इसकी लोकप्रियता इसकी नरमी और रूढ़िमुक्त होने के कारण थी।

8.3.2 भगवद्गीता एवं पश्चिम के साहित्यिक आन्दोलन

हम सार्वभौमीकरण के व्यापक दृष्टिकोण को प्राचीन भारतीय साहित्य के अलावा विश्व के कई अन्य साहित्यकारों तथा कलाकारों में देख सकते हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि पश्चिम हिन्दू दर्शन से अत्यधिक प्रभावित था। भगवद्गीता के अनन्त, गहन, विस्तृत और चिरस्थायी विचारों ने कई अवधारणाओं को जन्म दिया जिन्होंने पश्चिम में कई साहित्यिक आन्दोलनों को प्रेरित किया। अंग्रेज़ी, फ्रैंच, अमेरिकी तथा रूसी वैचारिक लेखकों ने भी इस पवित्र ग्रंथ के अनुवादों को पढ़कर इससे काफी प्रेरणा ग्रहण की।

भगवद्गीता का दर्शन और अर्न्तदृष्टि धर्म की परिधि से बाहर और सम्पूर्ण मानवता तक पहुँची। यह 'मानव-जाति की नियम-पुस्तिका' भी मानी जाती है। इसकी प्रशंसा न केवल मोहनदास करमचंद गाँधी जैसे महत्वपूर्ण भारतीयों ने की, बल्कि आल्डस हक्सली, अल्बर्ट, जे. रॉबर्ट ऑपेनहाइमर, राल्फ वाल्डो इमर्सन, कार्ल युंग तथा हर्मन हेसी ने भी की। भगवद्गीता प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद के माध्यम से पश्चिम तक पहुँची।

मूल भगवद्गीता आरम्भिक उपनिषदों द्वारा शुरू किए गए महान आन्दोलन के बाद और दार्शनिक सिद्धान्तों के विकास व उनके सूत्रबद्ध होने से पहले आई। भगवद्गीता की तिथि या लेखक के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। पहले के कुछ विद्वानों का मानना था कि 5वीं सदी ई.पू. और दूसरी सदी ई.पू. के बीच इसकी रचना हुई। उपनिषदों, योग, भगवद्गीता और महाभारत में हम ईश्वर और उसके मानसिक प्रक्षेप - इस ब्रह्माण्ड की झलक देखते हैं। यह दृष्टिकोण सार्वभौमीकरण का आधार स्तम्भ है। जहाँ भी यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ वहाँ सार्वभौमीकरण को प्राथमिकता मिली। भगवद्गीता का पहला अंग्रेजी अनुवाद चार्ल्स विल्किन्स ने 1785 में किया। इंग्लैण्ड में सॅमुएल टेलर कॉलरिज, डी. क्विन्सी और कार्लाइल ने अन्तर्ज्ञानवाद की नींव रखी। अमेरिकी अन्तर्ज्ञानवादियों में इमर्सन, जॉर्ज रिप्ले, एल्कॉट, फुलर, थोरो और पार्कर साहित्य के आकाश में चमके। इनमें से अधिकतर लेखकों ने सामान्यतः पूर्वी दर्शन और विशेषकर भगवद्गीता के प्रति अपना आभार प्रकट किया।

जर्मनी, इंग्लैण्ड और अमेरिका के स्वच्छन्दतावादी और रहस्यवादी आन्दोलन अन्तर्ज्ञानवाद से प्रेरित थे। इन देशों में अन्तर्ज्ञान, बुद्धि पर भारी पड़ा। भारतीय दर्शन में, लौकिक चेतना अन्तर्ज्ञान की पहचान (सत्ता) है। यह सभी अभिव्यक्तियों का प्रमाण है। बाद में, यूरोप और अमेरिका में जर्मन अन्तर्ज्ञानवाद का स्थान भारतीय प्राच्यवाद ने ले लिया। भारतीय प्राच्यवाद ने कई विद्वानों और साहित्यकारों जैसे इमर्सन, थोरो, पॉल डाइसन, मैक्समूलर, वाल्ट व्हिटमैन, विलियम जेम्स, टी.एस. इलियट, ई.एम. फॉस्टर और ऑल्डस हक्सली को प्रेरित किया। इन सभी पर उपनिषदों, गीता, योग और महाभारत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

इमर्सन की कविता 'ब्रह्मा' औपनिषदिक आध्यात्मिक दृष्टि से प्रेरित थी। उसका शिष्य थोरो स्वयं को 'योगी' कहता था और उसकी रचना 'वाल्डो' भारतीय आध्यात्म से प्रेरित थी। मैक्स मूलर, पॉल डायसन और रोमां रोलां पर रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद का प्रभाव देखा जा सकता है। रोलां ने रामकृष्ण के जीवन पर एक पुस्तक लिखी थी। अमेरिकी कवि वाल्ट व्हिटमैन द्वारा रचित लीव्स ऑफ ग्रास (Leaves of Grass) की कई कविताएँ उपनिषद् और गीता के आध्यात्म से प्रेरित थीं। प्राचीन संस्कृत साहित्य ने विलियम जेम्स की प्राच्यवादी कविताओं को प्रेरित किया। टी.एस. इलियट की वेस्ट लैण्ड (Waste Land) और फोर क्वार्टेट (Four Quartet) क्रमशः उपनिषद् और गीता के उद्धरणों और विचारों से भरी पड़ी हैं। फॉस्टर की ए पैसेज टू इंडिया (A passage to India) और हक्सली की पैरेनियल फिलॉस्फी (Perennial Philosophy) में क्रमशः भारतीय आध्यात्म एवं दर्शन का प्रभाव है।

बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी ने कई प्रसिद्ध टीकाएँ लिखीं, तथा इनका प्रयोग भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को प्रेरणा देने के लिए किया गया। तिलक ने अपनी टीका (1910-1911 में) अपनी छः वर्ष की जेल-यात्रा के दौरान लिखी, जब ब्रिटिश सरकार ने राजद्रोह के आरोप में उन्हें जेल भेज दिया था। इसी प्रकार कोई भी पुस्तक गाँधी के जीवन और विचारों के इतनी करीब नहीं थी जितनी कि भगवद्गीता, जिसे वे अपना 'आध्यात्मिक शब्दकोश' कहते थे। 1929 में, अपने यरवदा जेल प्रवास के दौरान, गाँधीजी ने भगवद्गीता पर एक टीका गुजराती में लिखी।

यह एक रोचक तथ्य है कि भगवद्गीता की व्याख्या करना काफी जटिल है, और इस कारण इसकी कई टीकाएँ हुई। हर व्याख्या किसी न किसी मामले में एक दूसरे से अलग है। 1981 में लारसन ने भगवद्गीता के लगभग चालीस अंग्रेजी अनुवादों की सूची बनाई और कहा कि भगवद्गीता के अनुवादों और उससे सम्बन्धित ग्रंथ-सूचियों की संख्या अनगिनत होगी। यह भारतीय टीकाओं की समृद्ध परम्परा को दर्शाता है तथा अन्तर्सांस्कृतिक जागरूकता लाने में भगवद्गीता की महत्ता को प्रदर्शित करता है। साथ ही यह भगवद्गीता को भारतीय आध्यात्म की एक विशेष अभिव्यक्ति और एक कालजयी धार्मिक कृति के तौर पर इसकी महत्ता को रेखांकित करता है।

ब्रिटिश कवि, आलोचक और नाटककार टी.एस. इलियट (1888-1965) की रचनाओं में (हिन्दू तथा बौद्ध दोनों प्रकार के) भारतीय प्रभाव देखे जा सकते हैं। इलियट ने 'वेस्टलैण्ड' की अनुर्वरता की समस्या का हल बृहदारण्यक उपनिषद् में ढूंढ लिया था - दत्त दयाध्तम, दम्यत'। उदाहरण के लिए, 'वेस्टलैण्ड' (इसे बीसवीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण कृतियों में गिना जाता है) का अन्त तीन 'शांति' से होता है, जो 1920 की इस लम्बी कविता को 'उपनिषद्' में रूपांतरित कर देता है क्योंकि भारतीय परम्परा में केवल उपनिषदों में ही अन्त में तीन बार मंगलकामना होती है। बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रति आभार प्रकट करते हुए इलियट बृहदारण्यक उपनिषद् की कथा 'The Voice of the thunder' का प्रयोग करते हैं। प्रजापति के पास जो तीन शिष्यों के तौर पर आए थे - सुर, असुर और मानव, उन्हें इलियट ने तीन मेधावी रूपों में परिवर्तित कर दिया है। उन्होंने संस्कृत के 'शांति, शांति, शांति' मंत्र का उच्चारण किया है। 'शतपथ ब्राह्मण' का भाग बृहदारण्यक उपनिषद् प्राचीनतम और सबसे प्रमुख उपनिषदों में से एक है। इलियट ने उपनिषदों का अनुवाद मैक्स मूलर के सैकर्ड बुक्स ऑफ द ईस्ट (Sacred Book of the East) (1879) में पढ़ा था। उनकी फोर क्वार्टेट (four Quartets) (1944) कविता का एक भाग द ड्राई सालवेजेज (The Dry Salvages) कृष्ण द्वारा अर्जुन को कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में दिए गए उपदेश - 'कर्म के फल की चिन्ता मत करो' को प्रकाश में लाता है।

यह देखना महत्वपूर्ण है कि जहाँ इलियट के पद मुख्यतः जटिल प्रतीकात्मकता से पूर्ण तथा विस्तृत हैं, वहीं यीट्स (आइरिश कवि) में भी रहस्यात्मक प्रवृत्तियां थीं। ये हिन्दू आध्यात्मिक आस्थाओं और तंत्र-मंत्र जैसे विश्वासों से प्रभावित थी जो उनके बाद (उत्तरार्द्ध) की कविताओं का आधार बनी। यीट्स की आध्यात्मिकता या सूक्ष्मता को उनके ए विजन (A vision) (1925) की रहस्यमय या गूढ़ सिद्धान्तों के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए। यीट्स ने स्वामी पुरोहित के साथ हिन्दू धार्मिक मिथकों और प्रतीकात्मकता के रहस्यमय तथा गूढ़ क्षेत्र में प्रवेश किया। स्वामी से यीट्स की मुलाकात 1930 में हुई तथा उनके सहयोग से उन्होंने उपनिषदों तथा अन्य पवित्र संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया। स्वामी से मुलाकात से पहले 1920 में प्रथम विश्वयुद्ध के विनाश के दो वर्ष बाद यीट्स ने द सेकेंड कमिंग (The Second Coming) शीर्षक से एक कविता की रचना की थी। इसमें उन्होंने संत जॉन की एंटी-क्राइस्ट के आगमन की दृष्टि को विष्णु के एक भयानक अवतार 'नरसिम्हा' में रूपान्तरित किया है। इसमें उन्होंने इस रूप को कयामत के एक जानवर के रूप में परिवर्तित किया है जो ईसाई सभ्यता के 2000 वर्ष के चक्र के अन्त में बालक यीशु के चरणों की ओर रेंगता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि यीट्स हिन्दू दर्शन से गहराई से प्रभावित थे। हिन्दू ब्रह्माण्ड-विज्ञान में सृष्टि के युग के बाद विनाश के युग का आना स्पष्ट है। इस कविता में यीट्स ने सभ्यता के सिद्धान्त को हिन्दू विचार के समानान्तर प्रतिपादित किया है।

8.4 अहिंसा एवं गाँधीवाद

इकाई 7 में 'अहिंसा' के विषय में आप विस्तार से पढ़ चुके हैं। 'अहिंसा' भारतीय धर्मों (हिंदू, बौद्ध और विशेषकर जैन) का एक महत्वपूर्ण तत्व है। 'अहिंसा' का अर्थ है - पशुओं समेत सभी प्राणियों के प्रति दया और प्रेम की भावना। इसके अनुसार, हर प्राणी एक दूसरे से जुड़ा है। मौखिक और शारीरिक हिंसा से दूर रहना भी इस सिद्धान्त का अंग है, हालांकि, आवश्यकतानुसार, स्वयं के बचाव के लिए प्रतिरक्षा भी आवश्यक बताया गया है। अहिंसा, गाँधी के विश्वास का प्रमुख मत था। यद्यपि गाँधी ने अहिंसा के मत की शुरुआत नहीं की थी, फिर भी उन्होंने ही पहली बार राजनीतिक क्षेत्र में एक बड़े स्तर पर इसका प्रयोग किया। अहिंसा और अप्रतिरोध की अवधारणा का भारतीय धार्मिक विचार में एक लम्बा इतिहास रहा है तथा हिन्दू, बौद्ध, जैन, यहूदी और ईसाई सन्दर्भों में यह अलग-अलग तरीके से प्रयोग में लाया जाता रहा है। गाँधी ने अपनी आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' (The Story of my Experiments with truth) में अपने जीवन और अपने दर्शन का वर्णन किया है। गाँधी इस सिद्धान्त में गहराई से विश्वास रखते थे।

गाँधी का मानना था कि सम्पूर्ण अहिंसा से ही कोई व्यक्ति क्रोध, मोह तथा विध्वंसकारी आवेगों से मुक्ति पा सकता है। यद्यपि उनका शाकाहार गुजरात की हिन्दू-जैन संस्कृति से निर्मित हुआ था, पर यह अहिंसा का विस्तार भी था। अहिंसा मुख्यतः अहिंसक प्रतिरोधों के विचार और अभ्यास में उनके योगदान से जुड़ी हुई है जिसे नागरिक प्रतिरोध भी कहा जाता है।

अहिंसा शब्द का उल्लेख यजुर्वेद के तैत्तरीय संहिता में मिलता है, यहाँ यह 'स्वयं बलि देने वाले को भी चोट नहीं पहुँचाने' के सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। यह शतपथ ब्राह्मण में चोट नहीं पहुँचाने के अर्थ में बिना किसी नैतिक अर्थ के सन्दर्भ में कई बार आता है। अहिंसा का सिद्धान्त ब्राह्मणवादी संस्कृति में उस अर्थ में बहुत बाद में विकसित हुआ जिस अर्थ में यह हिन्दू अर्थ में प्रचलित था अर्थात् सभी जीवों (सर्वभूत) के प्रति हिंसा के निषेध के रूप में। इसमें यह भी कहा गया है कि अहिंसा का पालन करने वाला व्यक्ति पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है।

गाँधी ने अहिंसा के सिद्धान्त को जीवन के सभी क्षेत्रों में, विशेषकर राजनीति में बड़ी सफलता से प्रयोग किया। उनके अहिंसक विरोध, आन्दोलन 'सत्याग्रह' का भारत में बहुत प्रभाव पड़ा। इसने पश्चिमी देशों के जनमत को भी काफी प्रभावित किया तथा नागरिक अधिकार आन्दोलनों के नेता जैसे मार्टिन लूथर किंग जूनियर को भी बहुत प्रभावित किया।

गाँधी ने 'अहिंसा' के अन्तर्गत, शारीरिक कष्ट पहुँचाने को ही बहिष्कृत नहीं किया, बल्कि मानसिक स्थितियों जैसे बुरे विचार और घृणा, क्रूर व्यवहार – जैसे कठोर शब्द, बेईमानी और झूठ इत्यादि को भी उन्होंने हिंसा का ही रूप माना जो अहिंसा के अनुरूप नहीं थे। श्री अरविंदो ने गाँधी की अहिंसा की अवधारणा की अयथार्थ कहकर आलोचना की और कहा कि यह सार्वभौमिक रूप से उपयुक्त नहीं है। उन्होंने एक व्यवहारिक रुख अपनाया और कहा कि हिंसा का स्पष्टीकरण विशेष परिस्थितियों पर ही निर्भर करता है। अलबर्ट वेत्जर के 'रैवरैंस ऑफ लाइफ' (Reverence of life) के सिद्धान्त को आकार देने में अहिंसा के ऐतिहासिक और दार्शनिक अध्ययन ने प्रेरणा स्रोत का कार्य किया। वेत्जर ने भारतीय दार्शनिक और धार्मिक परम्पराओं की यह कहकर आलोचना की कि उन्होंने सकारात्मक क्रिया पर बल देने के बजाय अहिंसा को हिंसा से बचने के नकारात्मक सिद्धान्त के तौर पर ही विचार किया है।

'अन्टू दिस लास्ट' (Unto This Last) जॉन रस्किन का अर्थव्यवस्था पर आधारित एक निबन्ध है जिसका प्रकाशन दिसंबर 1860 में मासिक जर्नल 'कॉर्नहिल मैगजीन' (Cornhil Magazine) के चार लेखों में हुआ। यह निबन्ध 18वीं और 19वीं सदी के पूँजीपति अर्थशास्त्रियों की एक आलोचना है। इस अर्थ में, रस्किन सामाजिक अर्थव्यवस्था के अग्रगामी हैं। चूंकि यह निबन्ध औद्योगीकरण के प्रकृति पर विध्वंसात्मक प्रभाव पर प्रहार करता है, कुछ इतिहासकार इसे हरित क्रांति का पूर्वानुमान भी मानते हैं।

'अन्टू दिस लास्ट' (Unto This Last) का गाँधी के दर्शन पर बहुत प्रभाव पड़ा। एक बार स्वयं गाँधी ने कहा था कि दुनिया को सिखाने के लिए उनके पास कुछ भी नया नहीं है। सत्य और अहिंसा पर्वतों की तरह ही प्राचीन हैं। 'सर्वोदय' शब्द का अर्थ है 'सब की उन्नति'। इसका प्रयोग पहली बार गाँधी ने जॉन रस्किन की अन्टू दिस लास्ट (Unto This Last) के अनुवाद में शीर्षक के तौर पर किया था। बाद में, अहिंसक नेता विनोबा भावे ने इसका प्रयोग स्वतंत्रता के पश्चात् गाँधीवादियों द्वारा किए जा रहे संघर्ष के लिए किया, ताकि आत्मनिर्णय और समानता की भावना को आम आदमी और पद दलितों तक पहुँचाया जा सके। वे इस पुस्तक तक मार्च 1904 में हेनरी पोलक के माध्यम से पहुँचे। गाँधी ने तुरन्त यह निश्चय किया कि वे रस्किन की शिक्षाओं के आधार पर अपने जीवन को ही नहीं बदलेंगे, बल्कि उन्होंने स्वयं का एक अखबार, 'इंडियन ओपिनियन' प्रकाशित करने का भी फैसला किया एक ऐसे फार्म में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की तनख्वाह बराबर होगी चाहे उनका कार्य, जाति या राष्ट्रीयता कुछ भी हो। यह उस समय के लिए एक क्रांतिकारी कदम था।

गाँधी ने कई महत्वपूर्ण नेताओं और राजनीतिक आन्दोलनों को प्रेरित किया। अमेरिका के नागरिक-अधिकार आन्दोलन के नेताओं – मार्टिन लूथर किंग, जेम्स लॉसन ने अहिंसा से सम्बन्धित सिद्धान्तों के विकास के लिए गाँधी की लेखनी से काफी कुछ ग्रहण किया। नस्ल-विरोधी (Anti-Apartheid) कार्यकर्ता तथा दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला भी उनसे प्रभावित थे।

आरम्भिक वर्षों में दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला गाँधी के अहिंसक आन्दोलन के अनुयायी थे। गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में बाद के कार्यकर्ताओं को 'श्वेत शासन' (White Rule) खत्म करने के लिए प्रेरित किया।

गाँधी के जीवन और शिक्षा ने कई लोगों को प्रेरित किया, विशेषकर उन लोगों को जो उन्हें अपना मार्गदर्शक मानते थे तथा जो उनके विचारों के प्रसार के लिए समर्पित थे। यूरोप में पहली बार रोमां रोलां ने अपनी पुस्तक 'महात्मा गाँधी (1929) में गाँधी पर चर्चा की, तथा बराक ओबामा ने सितम्बर, 2009 में वेकफील्ड हाईस्कूल के भाषण में यह कहा कि उनकी सबसे बड़ी प्रेरणा महात्मा गाँधी है। गाँधी ने अपने अहिंसा के संदेश से उन्हें प्रभावित किया। 'गाँधीवाद' शब्द गाँधी के विचारों, शब्दों और कार्यों को भी समेटता है जो दुनिया भर के लोगों के लिए एक अर्थ रखता है। तथा वे अपनी संस्कृति को निर्मित करने में इनका पथ-प्रदर्शक के तौर पर प्रयोग करते हैं। गाँधीवाद का प्रवेश अराजनीतिक तथा समाजेतर व्यक्तियों के कार्यक्षेत्रों में भी है। एक गाँधीवादी का अर्थ उस व्यक्ति से भी है जो इसका अनुकरण करता है। उस विशेष दर्शन से भी है जो गाँधीवाद से सम्बन्धित है।

8.5 साम्राज्यवाद एवं प्राच्यवाद

अनुवाद और अनुवाद अध्ययन अरब और पश्चिम दोनों के लिए विश्व के अन्य देशों को साम्राज्यवाद के अधीन करने के सशक्त साधन थे। अनुवादों ने शासकों को अपनी प्रजा को समझने में मदद की तथा प्रबल सामाजिक वर्गों को यह सुविधा भी प्रदान की कि वे शासित जनता को समझ सकें और उन पर प्रभुत्व जमा सकें। आरम्भिक मध्य बंगाली युग (1300-1500 ई.) के दौरान, बंगाल के मुस्लिम शासकों ने रामायण और महाभारत के 'आश्चर्यजनक प्रभाव' को समझा जिन्होंने हिन्दू जनता के धार्मिक और पारिवारिक जीवन को बहुत प्रभावित किया था। इस कारण उन शासकों ने संस्कृत के ज्ञाता बंगाली विद्वानों को इन ग्रंथों को बंगाली में अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया। इन अनुवादों को या तो हिन्दू राजाओं ने स्वयं को एकीकृत तथा मजबूत करने के लिए संरक्षण दिया या मुस्लिम शासकों ने हिन्दू जनता को समझने और इस प्रकार उन्हें नियंत्रित करने के लिए संरक्षण दिया।

अठारहवीं सदी के अन्त के ब्रिटिश ईस्ट इंडिया उपनिवेशी शासकों ने भारतीय जनता की भाषा, साहित्य और संस्कृति में रुचि लेना शुरू किया। उदाहरण के लिए ब्रिटिश विद्वानों ने प्राचीन भारतीय साहित्य की खोज करने और उन्हें अनूदित करने के लिए राज्य को प्रोत्साहन देने के लिए कहा। ईस्ट इंडिया कंपनी के कुछ अधिकारियों ने, जो स्वयं विद्वान थे, उन्होंने संस्कृत रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया। 1785 में चार्ल्स विल्किन्स ने गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसी प्रकार, भारतीय बुद्धिजीवियों, जैसे राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अंग्रेजी और संस्कृत की रचनाओं को अनूदित व रूपांतरित किया। राजा राममोहन राय (1774-1834) ने वेदान्त के सूत्रों, उपनिषदों और भगवद्गीता का अनुवाद बंगाल के डच मिशनरियों का प्रतिरोध करने के लिए किया जो हिन्दू धर्म के आलोचक थे।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शुरुआती वर्षों में दो महत्वपूर्ण विधि संकलन तैयार किए। इनमें से एक गवर्नर जनरल हैस्टिंग्स के निर्देशों के अन्तर्गत तैयार किया गया। इस संस्कृत सार-पुस्तिका को 'विवादर्णव सेतु' कहा गया। इसका अनुवाद फारसी में हो चुका था। बाद में इसे एन. हाल्हेड ने फारसी से अंग्रेजी में अनूदित किया। इसे लॉज ऑफ द जेन्टूस (Laws of the gentooS) कहा गया तथा यह पारिवारिक कानूनों से सम्बन्धित है। इसका प्रकाशन ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा 1776 में किया गया। 1778 में इसका जर्मन अनुवाद भी प्रकाशित हुआ।

'प्राच्यवाद' के उदय के माध्यम से भारत ने ही पहले पश्चिम पर साहित्यिक प्रभाव डाला। यह समीकरण औपनिवेशिक हस्तक्षेप द्वारा बिल्कुल बदल गया। यद्यपि कुछ भारतीय आलोचक पश्चिम के प्रभाव को बहुत प्रबलता से सिद्ध करने या उसकी निन्दा करने में रहे किन्तु भारतीय लेखकों की विवेकी प्रतिक्रियाएँ ग्रहण करने के प्रकार के रूप में प्रभाव और अन्तर-पाठ्यता दोनों के जटिल उदाहरण प्रस्तुत करती है। निस्संदेह, पूर्व की समृद्ध संस्कृति और प्राचीन विद्वता ने कई पश्चिमवासियों को बहुत प्रभावित किया है।

विलियम जोंस (1746-1794) 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' का अनुवाद करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। उन्होंने कालिदास के इस नाटक का अंग्रेजी में 'Sacontala or the fatal Ring' के नाम से अनुवाद किया। विलियम जोंस द्वारा शाकुंतलम् का अनुवाद भारतविद्या के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान था। इसने प्रसिद्ध जर्मन साहित्यकार जोहान डब्ल्यू गेटे

(1749-1832) का भी ध्यान आकर्षित किया जिन्हें कालिदास के नाटकों में सांसारिक यथार्थवाद और अलौकिक आनन्द के संगम के दर्शन हुए। 1819 की अपनी मुख्यकृति शॉपेनहॉवर के पृष्ठ दो में उन्होंने विलियम जोंस के प्रकाशनों में से एक का सन्दर्भ दिया है। उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन (विशेषकर लॉर्ड बायरन और सॅमुएल टेलर कॉलरिज) के काव्य में संवेदनशीलता के लिए श्रेय दिया जा सकता है, क्योंकि उनकी 'पूर्वी' काव्य-रचनाओं के अनुवाद इस शैली के प्रमुख प्रेरणा स्रोत बने। रोमांटिक आन्दोलन पूर्वी विचारों से बहुत प्रभावित था। 'गीत गोविन्द' का पहला अंग्रेजी अनुवाद सर विलियम जोंस ने 1792 में प्रकाशित किया, जिसमें कृष्ण और वृंदावन की गोपियों, विशेषकर राधा के सम्बन्ध का वर्णन है। इसके बाद *'गीत गोविन्द'* के विश्व भर में कई अनुवाद हो चुके हैं। यह संस्कृत काव्य की उत्कृष्टतम रचनाओं में से एक माना जाता है। बारबरा स्टोलर मिलर ने 1977 में इसका अनुवाद *लव सांग ऑफ द डार्क लॉर्ड : जयदेव्स गीत गोविंदम्* (Love song of the dark Lord : Jayadeva's Gita Govinda) के नाम से किया। जोंस को अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन की काव्य-संवेदना, विशेषकर लॉर्ड बायरन और सॅमुएल टेलर कॉलरिज की काव्य-संवेदना के लिए उत्तरदायी माना जाता है क्योंकि उनके पूर्वी काव्य रचनाओं के अनुवाद इस शैली के लिए प्रेरणा स्रोत बने। रोमांटिक कवि पूर्वी विचारधारा से गहराई से प्रभावित थे।

'लाइट ऑफ एशिया' तथा 'शकुंतला' के प्रकाशन और 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' तथा 'भगवद्गीता' के अनवुाद के साथ ही भारत पर आधारित लेखन की बाढ़ सी आ गई, इसकी रहस्यात्मक लोकगाथाओं पर लेखन भी केन्द्र में आया। जैसे- मोंटेस्क्यू पर्शियन लेटर्स (1721), विलियम थॉमस बेकफोर्ड की 'वाथेक' (1786), रॉबर्ट साउथी की 'थालाबा द डिस्ट्रॉयर' (1801) और 'कर्स ऑफ कहामा' (1810), सॅमुएल टेलर कॉलरिज की कुबला खान (1816), थॉमस मूरे की 'लाल्ला रुख' (1817) गेटे की 'वेस्टोस्लिर द दीवान' (1819), इमर्सन की 'इंडियन सुपरस्टिशियन' (1821), मैक्समूलर द्वारा मुद्रित ऋग्वेद के देवनागरी संस्करण तथा उसके साथ सायन की संस्कृत टीका एक अद्भुत रचना-कार्य था जिसने दुनिया के प्राचीनतम वेद के असली रूप को दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। ऑटो बॉह्टलिंक तथा रुडोल्फ रोथ का सात भागों का जर्मन-संस्कृत शब्दकोश भी इस क्षेत्र में एक अन्य युगान्तकारी घटना थी। रिचर्ड फ्रांसिस बर्टन के 'द बुक ऑफ वन थाउजेंड एंड वन नाइट्स' लियो टॉल्सटॉय की 'हादजी मुरात' (1912) और हर्मन हेसी की 'सिद्धार्थ' (1922) भी इस क्षेत्र में प्रमुख नाम हैं। एडवर्ड फिट्जेराल्ड ने उमर खैय्याम की रुबाईयत का फारसी से अंग्रेजी में अनुवाद किया। जिस तरह 1453 में यूनानी विद्वानों के तुर्की से यूरोपीयन देशों में प्रवजन के बाद 15वीं सदी में पाश्चात्य नवजागरण आया, उसी प्रकार पश्चिमी विद्वानों द्वारा संस्कृत, पाली और प्राकृत के अध्ययनों ने पिछली दो-ढाई शताब्दियों में भारतीय स्वच्छन्दतावाद, अभिजात्यवाद, अन्तर्ज्ञानवद, वेदान्तवाद और बौद्ध धर्म को पश्चिमी देशों में प्रवेश करने में मदद की है।

8.6 मानवतावाद

पश्चिम और भारतीय नवजागरण की समानताएँ स्पष्ट हैं। दोनों ही मानवतावाद से आन्दोलित थे, जो प्राचीन, अप्रचलित, अमानवीय प्रतिमानों, नियमों, व्यवहार, कला, शिक्षा के स्थान पर मानवता पर आधारित वस्तुओं को प्रतिस्थापित करना चाहते थे। यह जानना महत्वपूर्ण है कि मध्य युग के उत्तरार्द्ध के यूरोप तथा पूर्व आधुनिक युग में मानवतावादी नवजागरण एक बौद्धिक आन्दोलन था। यह चर्च के दमनकारी स्वभाव के विपरीत मानवता पर केन्द्रित था। दूसरी ओर भारतीय नवजागरण की शुरुआत 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई और इसने साहित्यिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विचारों के प्रवाह को आगे बढ़ाया और इसकी परिणति स्वतंत्रता आन्दोलन में हुई। कुल मिलाकर, भारतीय नवजागरण, पाश्चात्य नवजागरण से प्रेरित था और उसकी आत्मा से सराबोर था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इसमें पश्चिम से प्रेरित सुधारों की, विशेषकर शिक्षा, बाल-विवाह, सती-प्रथा विरोधी कानून लाने के क्षेत्र में आँधी ला दी जो आन्तरिक रूप से मानवतावादी थे।

उन्नीसवीं सदी के जर्मन इतिहासकार जार्ज वाइट (1827-91) ने पेट्रार्क को नवजागरण का प्रथम मानवतावादी माना है, जिन्होंने 'अंधकार का युग' (The Age of Darkness) का पहली बार प्रयोग किया। पेट्रार्क के अनुसार इस स्थिति को सुलझाने के लिए महान अभिजात्यवादी (या शास्त्रीय) लेखकों के अध्ययन और अनुकरण की आवश्यकता थी।

पेट्रार्क और बोकेशियों के लिए सबसे बड़े गुरू सिसेरो थे, जिनके गद्य प्रशिक्षित (लैटिन) और ग्रामीण (इतालवी) गद्य के आदर्श बने। एक बार व्याकरणिक रूप से दक्षता हासिल करने के बाद इसके माध्यम से वाक्पटुता और साहित्यिक अभिव्यक्ति हासिल की जा सकती थी। सिसेरो की यह प्रतीतिकरण की कला केवल स्वयं कला के लिए नहीं थी, बल्कि सभी लोगों - स्त्री तथा पुरुषों को एक बेहतर जिन्दगी जीने के योग्य बनाने के लिए थी। इस तरह साहित्यशास्त्र के कारण दर्शन आया और इसे साहित्यशास्त्र में अपनाया गया।

नवजागरण के मानवतावाद द्वारा प्रेरित प्राचीन पाण्डुलिपि की खोज के कारण प्राचीन दार्शनिक शाखाओं, जैसे नव-प्लेटोवाद का एक अधिक गम्भीर तथा सटीक ज्ञान प्रकाश में आया, जिसके विधर्मी ज्ञान को मानवतावादियों ने ईश्वरीय ज्ञान से प्राप्त किया हुआ माना और इसे एक ईसाई के जीवन के अनुकूल बताया। यूनानी और रोमन तकनीकी लेखन से बेहतर परिचय ने भी यूरोपीयन विज्ञान के विकास को प्रभावित किया। जिस तरह, कलाकार और आविष्कर्ता लियोनादो दा विंची ने कला के नवजागरण-कार्यों को समृद्ध करने के लिए मानव शरीर रचनाशास्त्र, प्रकृति और मौसम के अध्ययन का समर्थन किया, उसी प्रकार स्पेन के मानवतावादी जुआन लुईस वाइव्स (1493-1540) ने निरीक्षण, कौशल, और व्यावहारिक तकनीकों को विश्वविद्यालय में अरस्तु के दर्शन की शिक्षा का स्तर बढ़ाने के लिए समर्थन किया। जिससे उन्हें मध्यकालीन रूढ़िवाद से मुक्त होने में सहायता मिली। इसने वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल के आगमन को सम्भव बनाया जिसके फलस्वरूप नवजागरण आया। इस प्रकार प्राकृतिक दर्शन के लिए एक नया दृष्टिकोण अपनाने के लिए मंच सज गया। यह भौतिक ब्रह्माण्ड के आनुभाषिक निरीक्षणों व परिक्षणों पर आधारित था।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा के क्षेत्र में मानवतावादियों का कार्यक्रम (रूपरेखा) सबसे अधिक कारगर रहा। मानवतावादी शाखा का विचार था कि शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य के अध्ययन ने भविष्य के शासकों, नेताओं और समाज के पेशेवर लोगों को कीमती सूचनाओं और बौद्धिक प्रशिक्षण के साथ-साथ नैतिक शिक्षा और सभ्यता की शिक्षा भी दी थी। यह कई अवरोधों को पार कर कई परिवर्तनों के दौर से गुजरकर कई धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों से होते हुए हमारी सदी तक पहुँचा।

8.7 भारतीय साहित्य में नवजागरण

नवजागरण का अर्थ मुख्यतः मूल से प्रेरणा लेकर भविष्य का पुनःनिर्माण करना है। अतः इस अर्थ में किसी देश में नवजागरण किसी नए युग के आगमन जैसा है। भारतीय साहित्य के नवजागरण में कई प्रसिद्ध लेखकों की महत्वपूर्ण कृतियाँ शामिल रही हैं। 19वीं सदी के मध्य में भारतीय साहित्य को हिन्दू नवजागरण के रूप में एक नई शुरुआत देखने को मिली। यह मुख्यतः बंगाल प्रांत में केन्द्रित था। रविन्द्रनाथ टैगोर, शरतचंद्र चटर्जी और बंकिमचंद्र चटर्जी जैसे महान लेखकों ने एक साहित्यिक शैली स्थापित करके भारतीय साहित्य के नवजागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मध्ययुग में पंचतंत्र की नीति कथाओं को पश्चिम एशिया और यूरोप की भाषाओं में अनूदित किया गया और इन अनुवादों (या रूपान्तरों) ने विभिन्न देशों में नीतिकथा/नैतिक साहित्य (fable literature) के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। हालांकि भारतीय लेखक 19वीं सदी में ही नवजागरण साहित्य की उत्कृष्टता तक पहुँच सके। उन्होंने मानवतावाद को संकल्पनात्मक आधार बनाकर एक बड़े स्तर पर साहित्य का निर्माण किया जिसे यथार्थ में पश्चिम आरोपण कहा जा सकता है। तोरु दत्त, डेरोजियो, माइकल मधुसूदन दत्त की प्रभावशाली कलम से फ्रैंच और अंग्रेजी साहित्यिक कृतियाँ धाराप्रवाह निकलती रहीं। बंकिम और बाद में टैगोर तथा शरतचन्द्र ने भारतीय विषयों और संवेदनाओं को उभारा। रोचक रूप से टैगोर के अनुवाद अंग्रेजी में अधिक हुए और इन्हीं अनुवादों के कारण उनकी वैश्विक पहचान भी बनी तथा उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार भी मिला।

बांग्ला साहित्य से अलग, 20वीं सदी के हिन्दी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद (या रूमानीवाद) का दौर आया जो पश्चिम के 'रोमांटिसिज्म' का प्रभाव था। इसमें मुख्यतः सरल, सहज तथा देशी भाषा के शुद्ध लय एवं काव्य भाषा पर बल दिया गया। वे रोमांटिक कवियों - वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, ब्लेक, शेली और कीट्स से प्रेरित हुए। व फ्रांसीसी क्रांति और *'प्रीफेस टू लिरिकल बैलेड्स'* (Preface to Lyrical Ballad) से भी प्रभावित हुए, जिसे अंग्रेजी की

रोमांटिक आलोचना का 'घोषणा-पत्र' कहा जाता हे। वर्ड्सवर्थ की सबसे प्रसिद्ध कविताओं में से एक *टिनटर्न ऐब्बे* (Tintern Abbey) और कॉलरिज की *'दि राइम ऑफ दि एंसियेंट मरीनर'* (The Rime of the Ancient Mariner) का प्रकाशन इसमें हुआ। 'प्रीफेस टू लिरिकल बैलेड' रोमांटिक साहित्य सिद्धान्त की केन्द्रीय रचना मानी जाती है। इसमें वर्ड्सवर्थ एक नए प्रकार के काव्य तत्वों को देखते हैं जो 'मनुष्य की असली भाषा' पर आधारित है तथा जो 18वीं सदी की काव्यभाषा से बिल्कुल अलग है।

हिन्दी का 'छायावाद' रोमांटिक कविताओं से प्रेरित है। इस धारा के कवियों को 'छायावादी' कहा गया। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा और सुमित्रनंदन पंत चार प्रमुख छायावादी कवि हैं। नव-स्वच्छन्दतावाद का यह युग हिन्दी साहित्य की तरुणावस्था का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें अभिव्यक्ति के सौन्दर्य तथा गहन भावनाओं के प्रवाह को अभिव्यक्त किया गया तथा इसमें रूपवाद (परम्परावाद) और उपदेशवाद का विद्रोह किया गया। इस काल के चार प्रमुख कवि हिन्दी काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इस काल की एक अनूठी बात यह है कि इस दौर के कवि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से भावनात्मक रूप से जुड़े थे, उन्होंने शानदार (गरिमामयी) प्राचीन भारतीय संस्कृति को समझने और उसकी बृहद आत्मा को ग्रहण करने का भरपूर प्रयास किया।

हिन्दी काव्य के एक अन्य दौर को द्विवेदी-युग कहा जाता है जो 1900 से 1918 तक रहा। यह महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर रखा गया, जिन्होंने काव्य में आधुनिक हिन्दी भाषा को स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाई। उन्होंने हिन्दी काव्य में परम्परागत धार्मिक और प्रेम-कविताओं से अलग अन्य विषयों को भी प्रोत्साहित किया। उन्होंने राष्ट्रीयता और सामाजिक सुधार पर आधारित कविताओं को बढ़ावा दिया।

आधुनिक साहित्य की अन्य प्रमुख धाराएँ हैं - प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नई कहानी, समकालीन कविता, समकालीन कहानी आदि। इन पाश्चात्य अवधारणाओं (विचारों) को अनुवाद के माध्यम से ही भारतीय विचारधाराओं के अनुकूल बनाया गया। विचारों के रूपांतरण एवं अभिग्रहण के विषय में विस्तार से अगली इकाई में पढ़ेंगे।

अपनी संस्कृति के भीतर ही कई तरह की प्राचीन एवं समकालीन समानताओं के कारण ही भारतीयों ने सामान्य रूप से शेक्सपीयर और विशेषकर *किंग लियर* को बड़े स्तर पर अपनाया है। भारत में शेक्सपीयर के अनुवाद और अन्तरण की इन प्रवृत्तियों का उदाहरण देने के लिए *'किंग लियर'* सबसे सटीक नाटक है। भारतीय पाठकों तथा दर्शकों को किंग लियर की कहानी से काफी जुड़ाव तथा समानताएँ नजर आई हैं। यह एक भारतीय लोककथा की तरह है जिसमें एक बृहद राजा को बड़ा दुख होता है जब वह अपने राज्य के बंटवारे से पहले अपनी बेटियों की प्रेम-परीक्षा लेता है। उसे बड़ा सदमा पहुँचता है जब उसे पता चलता है कि उसकी सबसे चहेती-सबसे छोटी बेटी उसे नमक की तरह चाहती है। एक आवश्यकता की तरह - न अधिक न कम। वह क्रोध में उसे सम्पत्ति से बेदखल कर देता है और उसे अपनी दो अन्य बेटियों की दया पर छोड़ देता है। प्रायश्चित और तकलीफ के रूप में वनवास और देश निकाला - भारतीय महाकाव्यों - रामायण और महाभारत की भी केन्द्रीय संकल्पनाएँ हैं।

भारत में इसका पहला प्रदर्शन 1832 ई. में हुआ, जहाँ कुछ दृश्य अंग्रेजी में चौरंगी थियेटर, कलकत्ता में प्रदर्शित किए गए। 'रूपान्तरित' शेक्सपीयर के इस युग में (1860 से 1910 तक), 1880 के दौर में लियर का सुखान्त संस्करण *'अतिपिदाचरित'* जो मराठी के नहुम टाटे से प्रेरित था वह बम्बई में काफी लोकप्रिय हुआ। 1906 में पारसी थियेटर के आगा हश्र कश्मीरी के एक और रूपान्तरित (स्थानीकृत) नाटक *'सफेद खून'* को व्यावसायिक सफलता मिली तथा इसे देश भर में खेला गया। 1897 में पहला विश्वसनीय अनुवाद ए. गोविंदा पिल्लई के मलयाली संस्करण *'ब्रिट्टानिले राजावु लियर'* को त्रिवेन्द्रम में खेला गया। इसमें सूक्ष्म यथार्थवाद था। इसमें आयातित पोशाकों और गहनों का प्रयोग किया गया। इसे चुनिन्दा कलाकारों द्वारा गिने-चुने दर्शकों के समक्ष खेला गया जिसमें प्रसिद्ध उपन्यासकार और नाटककार सी.वी रमन पिल्लई ने लियर की भूमिका निभाई। 1964 में, समकालीन निर्देशकों मे से एक इब्राहिम अलकाजी ने उर्दू अनुवाद कर NSD (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) के लिए किंग लियर का प्रस्तुतीकरण किया। यह प्रस्तुति शेक्सपीयर के सार्वभौमिक रूप का एक मानक चिह्न (Benchmark) बन चुकी है। सत्तर के दशक में हिन्दी, मराठी और तमिल में इस नाटक के कई अनुवाद हुए। परन्तु भारत में सही मायने में यह 1980 के दशक में ही पूर्ण रूप से विकसित हुआ। इस दौर में कम से कम 21 अनुवादों के नाम लिए जा सकते हैं जिनमें कई भिन्न भाषाएँ शामिल थीं, जैसे बांग्ला, कन्नड़, हिन्दी, उर्दू, मराठी, मलयालम, तमिल। प्रदर्शन के आधार पर शेक्सपीयर को इनमें विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया जैसे स्थानीय, सार्वभौमिक, देशी, अंग्रेजी भाषी, उत्तर उपनिवेशवासी आदि।

8.8 विश्व-साहित्य में अनुवाद की भूमिका - मार्क्सवादी प्रभाव

विचारों और इनके अनुवाद की शक्ति को मार्क्सवाद में स्पष्टतः देखा जा सकता है जिसने अनुवाद में विचारों की शक्ति से विश्व क्रम को उलटकर रख दिया। सम्पूर्ण विश्व क्रम बदल गया, उत्पादन, शक्ति संरचना और स्वामित्व का ढाँचा मार्क्स द्वारा तय किए गए सैद्धान्तिक ढाँचे के अनुकूल बदलने लगे। मार्क्स के सिद्धान्तों ने सम्पूर्ण भूमण्डल का विभाजन दो भागों में कर दिया। इतिहास और समाज की मार्क्सवादी अवधारणा अब अकादमिकों द्वारा कई शिक्षण-प्रणालियों में लागू की जा रही है, जैसे - पुरातत्व विज्ञान, मानव-विज्ञान, जनसंचार अध्ययन, राजनीतिशास्त्र, रंगमंच, इतिहास, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, सांस्कृतिक अध्ययन, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, भूगोल, साहित्यिक आलोचना, सौन्दर्यशास्त्र, आलोचनात्मक मनोविज्ञान और दर्शन।

हीगल एक आदर्शवादी थे, और मार्क्स द्वंद्वात्मकता को भौतिकवादी शर्तों पर लिखना चाहते थे। उन्होंने 1859 में *'अ कंट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी'* (A Contribution to the Critique of Political Economy) की प्रस्तावना में इतिहास के अपने सिद्धान्त की भौतिकतावादी अवधारणा का सार प्रस्तुत किया। एडम स्मिथ से उन्होंने यह विचार ग्रहण किया कि श्रम ही सम्पत्ति का आधार है। यह व्यावहारिक और सैद्धान्तिक भिन्नता ही मार्क्स की प्राथमिक अन्तर्दृष्टि थी, और इससे ही उन्होंने ''अतिरिक्त मूल्य' (Surplus Value) का सिद्धान्त विकसित किया, जिसने उनकी रचनाओं को एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो से अलग किया। मजदूर एक दिन के किसी निश्चित समय में काम करके उस दिन के लिए आवश्यक मूल्य उत्पन्न करते हैं (Necessary labor-आवश्यक श्रम), हालांकि वे एक दिन में कई अतिरिक्त घण्टे काम करते रहते हैं और अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न करते रहते हैं (Surplus labor-अतिरिक्त श्रम)। मार्क्स ने डार्विन का *'द ओरिजन ऑफ स्पिशीज'* (The Origin of Species) पढ़ा और इसमें उन्होंने अपने वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त के समर्थन में इसके महत्व को पहचाना। डार्विन की रचना ने मानव-समाज के आन्तरिक संघर्ष को विश्लेषित करने में सहायता की तथा प्रकृति की प्रक्रियाओं का भौतिक विश्लेषण प्रस्तुत किया।

मार्क्सवादी विचार का प्रसार एवं उसके रूपान्तरण एवं अभिग्रहण के विषय में हम अगली इकाई में विस्तार से चर्चा करेंगे।

अकादमिक मार्क्सवाद, जिसे यूरोप और उत्तरी अमेरिका में इसकी प्रधानता (प्रभुत्व) के कारण कभी-कभी पाश्चातय मार्क्सवाद भी कहा जाता है, इसका तात्पर्य उन अकादमिक विषयों से है जिसमें मार्क्सवादी दृष्टिकोण और अवधारणाओं को अपनाया गया है। मार्क्सवादी नारीवाद, नारीवाद का ही एक अंग है जिसमें नारी की स्वतंत्रता के लिए पूँजीवाद को ध्वस्त करने पर बल दिया गया है। मार्क्सवादी नारीवाद कहता है कि निजी सम्पत्ति नारी पर हो रहे अत्याचार का मुख्य कारण है। यह आर्थिक असमानता, परतंत्रता, राजनीतिक गड़बड़ी, और अन्ततः स्त्री और पुरुष के बीच अस्वस्थ सामाजिक सम्बन्धों को जन्म देती है। मार्क्स के सिद्धान्त के अनुसार, पूँजीवादी समाज में व्यक्ति का व्यक्तित्व वर्ग-सम्बन्ध द्वारा निर्धारित होता है, अर्थात् व्यक्तियों की क्षमता, आवश्यकताएँ और रुचियाँ उनके उत्पादन के साधनों के आधार पर तय होते हैं जो उस समाज की भी विशेषताएँ प्रकट करता है जिसमें वे रहते हैं। मार्क्सवादी नारीवाद का मानना है कि लिंग-भेद भी उत्पादन के पूँजीवादी साधनों का परिणाम है। लिंग-भेद भी वर्ग-शोषण है और नारी को अधीन करना (दबाकर रखना) भी वर्ग-शोषण का रूप है जो नस्लवाद की तरह ही है क्योंकि यह पूँजी और शासक-वर्ग के अनुकूल है। मार्क्सवादी नारीवाद ने घरेलू श्रम और मजदूरी पर ध्यान देकर उनकी स्थिति को सहारा दिया और पारंपरिक मार्क्सवादी विश्लेषण को विस्तार दिया है।

8.9 सारांश

इस इकाई में हमने विभिन्न युगों में मानव-जाति के विचारों की यात्रा का संक्षिप्त ब्यौरा दिया। हमने पाया कि ये विचार मनुष्यता को आगे बढ़ाने में सहायक हैं। हर युग अपने प्रमुख विचारों और इसके निर्माताओं द्वारा ही परिभाषित होता है। हालाँकि, किसी भी क्रान्तिकारी या अन्य विचारों के प्रसार के लिए, विचारों की शक्ति एवं उसके सर्जक के व्यक्तित्व से अलग, हमें अनुवाद की शक्ति की भी जरूरत है। जैसे-जैसे कोई विचार अपनी सीमा से बाहर जाता है, वह अपनी बुनियादी और आधारभूत अवधारणाओं से अपरिचित व्यक्तियों से मिलता है। तब

एक अनुवाद न केवल भाषिक और साहित्यिक दूरी को कम करता है, बल्कि इसकी सांस्कृतिक गहराई (या अन्तर) को भी घटाता है तथा एक स्थानीय विचार को वैश्विक बना सकता है।

8.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) बाइबिल के युग में अनुवाद के उद्‌भव की चर्चा कीजिए। ईसाई धर्म प्रचार में अनुवाद योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
2) 'गाँधीवाद की स्थापना महान विचारकों की अनूदित कृतियों द्वारा हुई' इस पर चर्चा कीजिए।
3) 'मार्क्सवाद ने अनुवाद में विचारों की शक्ति को प्रतिपादित किया।' इस पर टिप्पणी कीजिए।
4) 'भगवद्‌गीता ने पाश्चात्य साहित्य को भी उतना ही प्रेरित किया जितना कि भारतीय साहित्य को।' इस कथन का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
5) क्या आप इस बात से सहमत हैं कि बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के प्रमुख कारणों में एक था?
6) अनुवाद का उपयोग शासक अपनी प्रजा को समझने और उन्हें नियंत्रित करने के लिए किस प्रकार करते थे? चर्चा कीजिए।

8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Alldritt, Keith. Eliot's Four Quartets, 1978). Poetry as Chamber Music. Woburn Press.
- Abrams, M.H., Natural Supernaturalism, 1973. Tradition and Revolution in Romantic Literature New York: W.W. Norton.
- Abrams, Meyer H., 1971. The Mirror and the Lamp. London: O. U. P. .
- Bassnett, S., 1991. Translation Studies, rev. ed, London: Routledge.
- Berlin, Isaiah, 1999. The Roots of Romanticism. London: Chatto & Windus.
- Bottomore, Thomas, ed. A Dictionary of Marxist Thought. Blackwell, 1991. Brotton, Jerry. The Renaissance: A Very Short Introduction, 2006.
- Bryant, Edwin, 2001, The Quest for the origins of Vedic culture. O U P .
- Campbell, Gordon, 2003. The Oxford Dictionary of the Renaissance.
- Cannon, Garland H.; & Brine, Kevin, 1995. Objects of enquiry: Life, contributions and influence of Sir William Jones. New York: New York University Press.
- Chakrabarti, Dilip, 1997. Colonial Indology, Munshiram Manoharlal: New Delhi.
- Desai, Mahadev, 1948. The Gospel of Selfless Action, or, The Gita According To Gandhi. Navajivan Publishing House: Ahmedabad: First Edition 1946. Other editions.
- Easwaran, Eknath, 2007. The Upanishads, Nilgiri Press.
- Edward Said, Orientalism New York: Random House.
- Eliot, T. S., 1922. The Waste Land.
- Foster, R. F. W. B. Yeats, 1997. A Life, Vol. I: The Apprentice Mage. New York: Oxford UP.
- Foster, R. F. W. B. Yeats, 2003. A Life, Vol. II: The Arch-Poet 1915–1939. New York: Oxford UP.
- Gandhi, M. K. (in English; trans. from Gujarati) Unto this Last: A paraphrase. Ahmedabad: Navajivan Publishing House
- Gandhi, M.K. An Autobiography or The Story of My Experiments With Truth. Ahmedabad: Navajivan Publishing House. 2nd edition.

- Gandhi, M.K., 1956. The Gandhi Reader: A Sourcebook of His Life and Writings. Homer Jack (ed.) Grove Press, New York.
- Gerald James Larson, The Song Celestial: Two centuries of the Bhagavad Gita in English, Philosophy East and West: A Quarterly of Comparative Philosophy University of Hawai'i Press. 1981.
- Grant, Michael (ed.)., 1982. T. S. Eliot: the Critical Heritage. Routledge & Kegan Paul.
- Harvey, Peter, 1990. An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices. Cambridge University Press.
- Hindi Literature of the Nineteenth and Early Twentieth Centuries, by Ronald Stuart McGregor. Published by Harrassowitz, 1974.
- Jones, William, Sir, 1970. The letters of Sir William Jones. Cannon, Garland H. (Ed.). Oxford.
- Keown, Damien. Dictionary of Buddhism. Oxford University Press, 2003.
- L. Venuti (Ed.), The translation studies reader (pp. 84-93). London: Routledge.
- Metcalf, Barbara; Metcalf, Thomas R., 2006. A Concise History of Modern India (Cambridge Concise Histories). Cambridge and New York: Cambridge University Press.
- Mueller, Friedrich Max A history of ancient Sanskrit literature so far as it illustrates the primitive religion of the Brahmans, Williams & Norgate, 1859.
- Mukherjee, S. N. Sir William Jones: A study in eighteenth-century British attitudes to India. London, Cambridge University Press, 1968.
- Norman L. Geisler, William E., 1986. Nix. A General Introduction to the Bible. Moody Publishers.
- Parmeshwaranand, Swami, 2000. Encyclopaedic Dictionary of Upanisads, Sarup and Sons.
- Peter Fritzsche, 1990. Rehearsals for Fascism: Populism and Political Mobilization in Weimar Germany. New York: Oxford University Press.
- Radhakrishnan, S., 2002. The Bhagavad Gita, HarperCollins.
- Robinson, Douglas. (2003) Becoming a Translator: An Introduction to the Theory and Practice of Translation, London: Routledge.
- Y. Masih In : 2000. A Comparative Study of Religions, Motilal Banarsidass Publ : Delhi.

इकाई 9 विचारों का अभिग्रहण एवं रूपान्तरण

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 धार्मिक परिदृश्य, विचारों का रूपान्तरण एवं अनुवाद

9.3 भारत में द्वैतवाद

9.4 नॉन वॉइलेंस, अहिंसा एवं गाँधीवाद

9.5 अधीन राष्ट्रों एवं विश्व पर प्रभाव : भारत में पश्चिमी पूँजीवाद का उदय

9.6 भारतीय विश्वदृष्टि पर मानवतावाद का प्रभाव

9.7 भारतीय साहित्य में पुनर्जागरण

9.8 विश्व साहित्य पर मार्क्सवादी का प्रभाव

9.9 साम्प्रदायिकता : एक व्यापक विच्छेद

9.10 सारांश

9.11 अभ्यास के लिए प्रश्न

9.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगेः

- विचारों के विकास की प्रक्रिया;
- विचारों के रूपान्तरण एवं अभिग्रहण के कारण;
- विचारों के रूपान्तरण एवं अभिग्रहण की प्रक्रिया; और
- विचारों के रूपान्तरण एवं अभिग्रहण में अनुवाद की भूमिका।

9.1 प्रस्तावना

विचारों के उद्‌गम बिन्दु का ठीक-ठीक पता लगाना सम्भव नहीं है। विचारों के उत्पन्न होने, उनकी यात्रा, विचारों, व्यक्ति व समाज के बीच सम्बन्ध; समाज में विचार कैसे पहचाने जाते हैं तथा विचारों की यात्रा में अनुवाद की भूमिका को चरम पर पहुँचाने वाली प्रक्रियाएँ भी उतनी ही अस्पष्ट हैं। यद्यपि विचारों के प्रारम्भ की प्रक्रिया बहुत से कारकों से सम्बन्धित है, तथापि विचारों के प्रसार के लिए अनुवाद की भूमिका निर्णायक है। विचारों का प्रसार धर्म और फ्रांसीसी क्रांति जैसे विविध परिवर्तनों और क्रांतियों की ओर ले जाता है। औद्योगिक क्रान्ति मूल रूप से संकल्पनात्मक चरण पर एक परिवर्तन थी। इन विचारों का प्रसार अभिग्रहण के अंश के साथ इनके अनुवाद पर भी निर्भर है। अनुवाद विचारों को उन लोगों तक पहुँचाने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है जो मूल विचारों से अपरिचित होते हैं। अन्यथा अनुवाद की शक्ति के अभाव में ये विचार उन लोगों की पहुँच से परे विदेशी भाषा तक सीमित रह जाते जो उस मूल भाषा से अपरिचित हैं। इस प्रकार अनुवाद के बिना विचारों का बड़े पैमाने पर अन्तरण करना असम्भव होता।

परस्पर प्रभाव अथवा अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण से सदा विचारों का अन्तरण होता रहा है। कोई विचार या सिद्धान्त दुनिया के किसी एक भाग में जन्म लेता है किन्तु वह पूरे विश्व में फैल सकता हे। चाहे धार्मिक विचार और परम्पराएँ

हों या राष्ट्रीय साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, प्रत्येक ने अनुवादों द्वारा प्रसार के कारण यथासम्भव प्रभाव डाला है। उदाहरण के लिए भक्ति आन्दोलन दक्षिण भारत में उदित हुआ किन्तु इसके कुछ सबसे बड़े प्रतिपादक उत्तर भारत में पाए जाते हैं। पूर्व और पश्चिम के बीच दो तरफा सांस्कृतिक आदान-प्रदान से भी विश्व के महान साहित्यों का जन्म हुआ। जैसे पश्चिमी गद्य लेखन के अनुवाद से भारतीय साहित्य में भी इस विधा के लेखन का उदय हुआ।

इस इकाई में अनुवाद के सिद्धान्त, उसके इतिहास, विचारों के सम्प्रेषण में इसके प्रभाव तथा कैसे ये विचार सार्वभौमिक बने, इस पर विशेषकर भारत के सन्दर्भ में चर्चा की जाएगी। यद्यपि विचारों का तात्विक महत्व, ग्रहणकर्त्ता की ग्रहणशीलता के साथ-साथ सम्प्रेषण के माध्यम, विचारों के अन्तरण के विस्तार तथा तेजी को परिभाषित करते हैं। तथापि इसे क्षेत्र और गति भाषा व अनुवाद ही प्रदान करते हैं। उत्पन्न होने के पश्चात् विचार खोज, धर्म, स्वीकार्यता, माध्यम, भाषा के प्रकार्य रूप में विकसित होते हैं। अनूदित होकर प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व इंटरनेट के द्वारा प्रसारित होते हैं। ये सभ्यताओं के मूलभूत अंग के रूप में काम आते हैं और उन्हें पारिभाषित करते हैं। समय के बहाव के साथ विचार अपेक्षाकृत अपरिवर्तित रहते हैं। किन्तु भिन्न ऐतिहासिक कालों में एकक-विचार नए प्रतिमानों में पुनः संघटित हो जाते हैं और नए रूपों में अभिव्यक्ति पाते हैं।

इस प्रक्रिया में अनुवाद निर्णायक भूमिका निभाता है। गाँधीवाद, मार्क्सवाद, डार्विनवाद, द्वैतवाद, स्वच्छन्दतावाद और मानवतावाद ने चूंकि स्वयं को भाषाओं की शक्ति को समर्पित कर दिया था इसलिए वे सार्वभौमिक स्तर पर फैल सके। भाषाओं की शक्ति द्वारा ही इनका व्यापक रूप में अनुवाद, अनुकूलन, रूपान्तरण और कायान्तरण हुआ। उदाहरण के लिए मार्क्सवाद के सिद्धान्तों और दर्शन का प्रतिपादन जर्मन भाषा में हुआ, किन्तु उस महाद्वीप के पार यह अंग्रेजी अनुवाद में फैला। इसने विश्व में हलचल मचा दी, सामाजिक संरचनाओं का रूपान्तरण किया और आर्थिक ढाँचे को परिवर्तित किया। यह केवल तभी सम्भव हुआ जब यह विभिन्न भाषाओं के माध्यम से संसार में फैला। चुनाव जीतने वाले राजनीतिक दलों को उत्पन्न करके इसने लोकतंत्र में भी वैधता पाई। इसके अतिरिक्त भारत में मार्क्सवाद ने माओवाद और नक्सलवाद जैसे नकारात्मक और हिंसक रूपों को भी प्रेरित किया। इस इकाई का उद्देश्य ऐसे भूमण्डलीय विचारों और वैचारिक प्रवृत्तियों को उनके ऐतिहासिक विकास की व्याख्या करते हुए, सभ्यताओं के इतिहास में उनकी भूमिका, नए रूपों और प्रतिमानों में अनुकूलन और रूपान्तरण के उनके पथ पर चर्चा करते हुए पहचानना है। यह सब अनुवाद की शक्ति के बिना सम्भव नहीं था।

9.2 धार्मिक परिदृश्य, विचारों का रूपान्तरण एवं अनुवाद

सबसे पहले विचार और अवधारणाएँ धर्म के क्षेत्र में थीं। बाइबिल के अनुसार, ''प्रारम्भ में केवल शब्द था।' किसी भी धर्म की सबसे बड़ी गतिविधियों में से एक, अन्य धर्मों के सदस्यों को समझने और धर्म परिवर्तित करने के लिए उन तक अपने विचार सम्प्रेषित करना होता है। उदाहरण के लिए, धर्मसुधार आन्दोलन का जन्म तब हुआ, जब चर्च के अधिकारी वर्ग ने साधारण जनता को उनकी मूल भाषाओं में बाइबिल पढ़ने पर रोक लगाई। जर्मन धर्मशास्त्री, लेखक और धर्मसुधार आन्दोलन के प्रवर्त्तक मार्टिन लूथर (1483-1546) ने एक अत्यन्त शक्तिशाली लहर को तब उत्तेजना प्रदान की जब उन्होंने बाइबिल का अनुवाद उच्च जर्मन भाषा में किया। उन्होंने इसका प्रयोग प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन में रोमन पुरोहित वर्ग के विरुद्ध एक वैचारिक शास्त्र के रूप में किया।

भारत में ईसाई धर्म बहुत पहले आ गया था, यद्यपि निश्चित तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती। पारम्परिक रूप से कहा जाता है कि ईसाई धर्म सर्वप्रथम दक्षिण भारत के मालाबार तट पर 52 ई. में धर्म प्रचारकों में से एक सैन्ट थॉमस के आगमन के साथ आया। माना जाता है कि उन्होंने वहाँ की क्षेत्रीय भाषा में उपदेश दिए ताकि वे शीघ्रता से नए धर्म परिवर्तन करा सकें। उन्होंने कुछ वर्ष दक्षिण भारत में बिताए और मद्रास के निकट उनकी मृत्यु हुई। आरम्भिक ईसाइयों ने व्यवहार द्वारा भाषाओं में अपने धार्मिक विश्वासों की व्याख्या करके अपनी भावी लोकप्रियता का बीजारोपण किया। यहाँ तक कि धार्मिक विश्वासों की एक नई व्यवस्था के परिचय के दौरान, राज्य संरक्षण के बिना भी उन्होंने लोकोपकारी कार्य और शिक्षा पर बल दिया। चर्च के आरम्भिक अधिकारियों ने कई स्थानीय भाषाओं और रीति-रिवाजों को अपनाया। ईसाई मिशनरी क्रियाकलाप 1544 ई. में सेन्ट फ्रांसिस जेवियर द्वारा प्रारम्भ हुए। उनका अनुसरण करते हुए स्थानीय गैर-ईसाइयों के धर्म-परिवर्तन का उद्देश्य लिए पुर्तगाल, डेनमार्क, हालैण्ड, जर्मनी व ग्रेट ब्रिटेन से अन्य मिशनरी भी आए।

राज्य समर्थित संस्थागत ईसाई धर्म को 1858 में बढ़ावा मिला, जब भारत का शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी से सीधे ब्रिटिश सरकार के हाथ में चला गया। तत्पश्चात् ईसाई धर्म और अंग्रेजी शासन साथ-साथ चले जब अनेक देशों से ईसाई, मिशनरियों के रूप में आए और 50 सालों के भीतर ही ईसाई धर्म भारत के अनेक भागों में स्थापित हो गया। जब ईसाई एक विशेषाधिकार प्राप्त समुदाय बन गए तो अनुवादों के प्रयास और स्थानीय रीति-रिवाजों का अंगीकरण कम हो गया। विचारों के प्रसार ने, धर्म-परिवर्तन द्वारा विश्वासों और जीवन शैलियों के सम्पूर्ण समूह के वाहक का रूप ले लिया।

यद्यपि भीतरी क्षेत्रों में जनजातियों और पहाड़ी लोगों के बीच इसका वास्तविक विस्तार उन मिशनरियों के निरन्तर और अथक प्रयासों के कारण हुआ जो ईसा मसीह के आदर्शों पर जीते थे। ये मिशनरी बाइबिल के आदर्शों का पालन करते थे। ये ईसाई धर्म के विचारों को स्थानीय भाषाओं में जनता तक पहुँचाने के लिए अनुवाद की शक्ति का प्रयोग कर रहे थे। आज ईसाइयों की जनसंख्या 30 मिलियन है जो भारत की जनसंख्या का 2.34% है। साथ ही 23 बिशप प्रदेशों में से 11 केवल केरल में स्थित हैं।

9.3 भारत में द्वैतवाद

विचारों का प्रसार सभी महाद्वीपों में कई रूपों में हुआ जैसा कि हम पूर्व और पश्चिम की भिन्न-भिन्न विचारधाराओ में वैचारिक स्तर पर अनेक समानताएँ पाते हैं। उदाहरण के लिए धर्म में द्वैतवाद का सिद्धान्त है कि यह संसार दो आधारभूत, विपरीत तथा अखण्डनीय मूल तत्वों से बना है। धर्म में यह सिद्धान्त संसार के अस्तित्व के कारण दो सर्वोपरि विपरीत शक्तियों या देवता अथवा दिव्य या असुरीय अस्तित्वों के समूह में विश्वास का प्रतीक है। यह अद्वैतवाद से अलग है जो संसार को एक अकेले मूल तत्व जैसे कि जीव या आत्मा के रूप में मानता है। द्वैतवाद के विभिन्न प्रकारों में विभिन्न विशेषताएँ पहचानी जा सकती हैं। यह निरपेक्ष भी हो सकता है और सापेक्ष भी। निरपेक्ष द्वैतवाद जैसे कि पारसी धर्म और मानीवाद में अच्छाई और बुराई दोनों ही अनन्तकाल से हैं वहीं विधर्मी ईसाई समूह बोगोमिल्स जैसे सापेक्ष द्वैतवाद में शैतान एक पतित देवदूत है जो ईश्वर के पास से आया और मानव शरीर का रचयिता था। किन्तु उसने युक्ति से ईश्वर से उस शरीर में आत्मा डलवाई। इसमें एक और अनेक, पदार्थ और दिक्स्थान, विचार और विषय, बाहरी और आन्तरिक, जीव और आत्मा के बीच एक निरन्तर तनाव या संघर्ष है। यद्यपि भारतीय मनीषी भी इसे स्वीकार करते व अभिन्न मानते हैं किन्तु यह भी मानते हैं कि यह माया के कारण होता है और जैसे ही मनुष्य प्रबुद्ध हो जाता है यह समाप्त हो जाता है।

भारतीय द्वैतवाद एक और अनेक, सत्य और आभास के बीच अन्तर्निहित विरोध पर विचार करता है। एक प्राचीन हिन्दू श्लोक के अनुसार (ऋग्वेद 1090) प्राचीन आदिम मनुष्य 'पुरुष' और स्वर्ग में जो अनश्वर है, वह इस संसार के विपरीत है। पारलौकिक संसार को रचने वाले पुरुष के तीन चौथाई अंग उसके बाकी एक चौथाई अंग के विपरीत हैं। वह अंग यह संसार है अर्थात् इस संसार का वह दिव्य आधार, वह ईश्वरीय तत्व उसके अंगों से बना है। जीव को तीन भिन्न गुणों में विभाजित किया जाता है। ये एक-दूसरे से पदानुक्रमिक रूप में सम्बन्ध रखते हुए अस्तित्व के तीन चरणों और मानवता के मौलिक स्वभाव को उच्चारित करते हैं। स्वयं में मुक्त, शाश्वत, असीम आत्मा जीव के विकास से उसमें मिल जाती है। मोक्ष प्रबोधन में निहित है जो वस्तुओं की सही परिस्थिति के ज्ञान से आता है कि मैं (आत्मा) एक वस्तु हूँ और वह (जीव) दूसरी।

9.4 नॉन वॉइलेंस, अहिंसा एवं गाँधीवाद

अहिंसा के विषय में हम इकाई 7 में विस्तार से पढ़ चुके हैं कि अहिंसा और अप्रतिरोध की संकल्पना का भारतीय धार्मिक सिद्धान्त में लम्बा इतिहास रहा है। इसके हिन्दू, बौद्ध, जैन, यहूदी और ईसाई सन्दर्भों में अनेक पुनर्प्रवचन हुए हैं। अहिंसा महात्मा गाँधी के विचारों का मूल सिद्धान्त था। तथापि अहिंसा के श्रेष्ठतम प्रतिपादक माने जाने वाले महात्मा गाँधी ने अपने जीवन के विश्वासों को उन आदर्शों पर निर्मित किया जो उन्होंने एक अनुवाद में पढ़े थे। गाँधी जी अहिंसा के सिद्धान्त के जनक नहीं थे, यद्यपि वे व्यापक स्तर पर राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रयोग करने वाले प्रथम व्यक्ति थे।

अहिंसा शब्द 'यजुर्वेद' की तैत्रीय संहिता में आता है। वहाँ पर यह स्वयं त्याग करने वाले के लिए अहानि के सम्बन्ध में है। यह 'शतपथ ब्राह्मण' में बिना किसी सम्पृक्तार्थ के 'अहानि' के भाव में अनेक बार आता है। अहिंसा का सिद्धान्त ब्रह्मवादी संस्कृति में उस अर्थ में बहुत बाद में विकसित हुआ जिस अर्थ में यह हिन्दुत्व में प्रचलित था। यह 'सभी प्राणियों' (सर्वभूता) के विरुद्ध हिंसा का निषेध करता कहा जाता है कि अहिंसा के सिद्धान्त को मानने वाले को पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिल जाएगी। बहुत ही प्रामाणिक अनेक धर्मग्रन्थों में बलि प्रथा को छोड़कर पालतू पशुओं के विरुद्ध हिंसा निषिद्ध है। यह दृष्टिकोण महाभारत, भागवत् पुराण और छंदोग्य उपनिषद् में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त है। यह मनुस्मृति और विशेषतः सुविख्यात पारम्परिक हिन्दू नियम ग्रंथ 'धर्मशास्त्र' में भी उल्लिखित है।

जॉन रस्किन का 'अन टु दिस लॉस्ट' अर्थनीति पर लिखा गया निबन्ध है। यह दिसम्बर 1860 में मासिक जर्नल 'कॉर्नहिल मैगजीन' में प्रथम बार चार भागों में प्रकाशित हुआ। यह निबन्ध 18वीं और 19वीं शताब्दी के पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के विषय में बहुत ही आलोचनात्मक है। इस अर्थ में रस्किन सामाजिक अर्थव्यवस्था के पुरोगामी माने जाते हैं।

'अन टु दिस लॉस्ट' का गाँधी के दर्शन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने इस पुस्तक को मार्च 1904 में हैनरी पोलक की सहायता से खोजा था। उन्होंने तत्काल न केवल रस्किन की शिक्षा के अनुसार अपने जीवन को बदलने का निश्चय किया अपितु अपना स्वयं का समाचार-पत्र 'इंडियन ओपीनियन' प्रकाशित करने का भी निश्चय किया। यह एक ऐसे फार्म में प्रकाशित होता था जहाँ जाति या राष्ट्रीयता के भेदभाव के बिना प्रत्येक को समान वेतन पर कार्य मिलता था। यह उस समय के लिए बहुत ही क्रांतिकारी कदम था। इस प्रकार गाँधी ने इन विचारों को व्यवहार में लाने के लिए सफल व्यवस्था बनाई। उनके अनुसार कथित आर्थिक कानून मूल रूप से हिंसात्मक थे और जिस अहिंसात्मक समाज की उन्होंने कल्पना की थी उसके लिए पर्याप्त नहीं थे। यह पुस्तक नॉन वॉइलैंस या अहिंसा के उनके आजीवन विरोध का आरम्भिक बिन्दु बन गई।

गाँधी ने अहिंसा के सिद्धान्त को जीवन के सभी क्षेत्रों, विशेषकर राजनीति में प्रयोग करके बहुत ही सफलतापूर्वक बढ़ावा दिया। उन्होंने अपने जीवन-दर्शन और सिद्धान्त के बारे में अपनी आत्मकथा 'दि स्टोरी ऑफ माई ऐक्सपरिमेंट्स विद ट्रुथ' में उल्लेख किया है। गाँधी के विचार में अहिंसा मात्र शारीरिक चोट पहुँचाने की क्रिया को रोकना ही नहीं है, अपितु मानसिक स्थितियों जैसे बुरे विचार और घृणा, कठोर शब्द, बेईमानी व झूठ बोलने जैसे दुर्व्यवहार – इन सभी को वे अहिंसा के साथ असंगत, हिंसा की अभिव्यक्तियों के रूप में देखते थे। अहिंसा विशेष रूप से अहिंसात्मक विरोध के विचार और व्यवहार के लिए उनके योगदानों से सम्बन्धित है।

9.5 अधीन राष्ट्रों एवं विश्व पर प्रभाव : भारत में पश्चिमी पूँजीवाद का उदय

एक चरण पर पूँजीवाद तीव्र शक्ति था जिसने न केवल सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों को परिवर्तित किया अपितु सम्पूर्ण अवधारणात्मक ढाँचे को परिवर्तित होने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि जब भारत में इसे प्रत्यारोपित किया गया तो इसका अनुवाद भी उतना ही व्यापक किन्तु रूपान्तरणों से ओत-प्रोत था जिसने पूँजीवाद का मूल स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया।

यूरोप में उदित पूँजीवाद एक सहज आर्थिक व बौद्धिक परिवर्तन नहीं था। अपितु यह परिवर्तनों का जटिल उत्पत्ति स्थान था जिसकी परिधि में न केवल आर्थिक पक्ष अपितु कृषि सम्बन्धी, औद्योगिक, राजनीतिक, औपनिवेशिक और यहाँ तक कि कला व संस्कृति के परिवर्तन भी आए। यह इस बोध से शुरू हुआ कि अधिकतम लाभ अर्जित करने के लिए अत्यधिक मात्रा में उत्पादित वस्तुओं की पूर्ण खपत की आवश्यकता है जिसके लिए उन्हें बड़ी संख्या में बेचने की आवश्यकता है। किन्तु इस प्रकार की उत्पादन व्यवस्था स्थापित करने में एक सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र बनाने की आवश्यकता थी। माल के उत्पादन में संघ-शासित बड़ी श्रम शक्तियाँ नियुक्त होती हैं। उत्पादन व उपभोग को जोड़ने वाली एक चक्रीय वैध प्रक्रिया काम करती है।

उत्तर 18वीं और प्रारम्भिक 19वीं शताब्दियों के दौरान औद्योगिक क्रान्ति मजदूरों व मालिकों के बीच सामाजिक सम्बन्धों में भूमण्डलीय पूँजीवाद आधारित परिवर्तनों की सबसे बड़ी विस्तारक बनी। फैक्टरी व्यवस्था से यह

परिवर्तन आया। फैक्टरी व्यवस्था ने काम पर श्रम का नियंत्रण सम्भव किया। विभिन्न यांत्रिक आविष्कारों व अभिनव परिवर्तनों ने श्रम के नियंत्रण में सहायता दी। इन सब चीजों ने मिलकर मजदूरों को जीवित रहने के साधनों, उत्पादन क्रिया और अपने कार्य के उत्पाद पर नियंत्रण के अधिकार से वंचित कर, उन्हें धरती पर अपना समय व श्रम शक्ति एक मजदूरी के लिए बेचने की आवश्यकता के साथ छोड़ा। नव-परिवर्तनों ने बेरोजगार मजदूरों की फौज का अस्तित्व सुनिश्चित किया। जिससे कि मजदूरी लाभ को क्षति पहुँचाने वाले बिन्दु तक न बढ़ सके। शहरीकरण के साथ जन-उपभोग की वस्तुएँ जैसे कि कपड़े व जूते अब घर पर नहीं बनाए जाते थे अपितु मजदूरों को खरीदने पड़ते थे।

पूँजीवाद क्या है और कैसे यह विभिन्न शताब्दियों की कालावधियों में उदित हुआ, यह एक विस्तृत और जटिल विषय है। किन्तु जिस प्रकार यह भारत में फैला वह पश्चिमी नमूने से बिल्कुल भिन्न था। सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य जैसे आवश्यक परिवर्तनों से इतर यह तथ्य भी महत्वपूर्ण था कि भारत इंग्लैंड का उपनिवेश था।

पश्चिमी पूँजीवाद भारतीय पूँजीवाद से किन मायनों में भिन्न है यह देखने के लिए कुछेक पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक है। चूँकि भारतीय पूँजीवाद उपनिवेशवाद के अन्तर्गत उत्पन्न हुआ, बढ़ा और समृद्ध हुआ, इसलिए यह पूँजीवाद के पश्चिमी नमूने से कई प्रकार से भिन्न हो गया। आर्थिक राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय संघर्ष का एक मुख्य घटक बना और गाँधीवादी संघर्ष में प्रभावी ढंग से प्रयुक्त हुआ। धन का विकास, स्वदेशी उद्योगों का विनाश, देशज उद्योगों का संरक्षण, उच्च सीमा शुल्क, निम्न आयात शुल्क – ये सभी मुख्यधारा के एजेंडे का हिस्सा थे। औपनिवेशिक शासन ने सम्पत्ति के अधिकार की गारंटी दी, मुक्त व्यापार को प्रोत्साहन दिया और निश्चित विनिमय दर के साथ एक ही मुद्रा लागू की। साथ ही पूँजी बाजार, रेलवे व टेलीग्राफ की एक पूर्ण विकसित व्यवस्था, राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त सिविल सेवा तथा एक समान कानून विधि-व्यवस्था बनाई। अंग्रेजों द्वारा भारत का औपनिवेशीकरण, औद्योगीकरण तथा उत्पादन व व्यापार में महत्वपूर्ण वृद्धि जैसे विश्व अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ हुआ।

पूँजीवाद से सीधे उदित हुए विचारात्मक प्रभावों में से एक स्वच्छन्दतावाद एक साहित्यिक आन्दोलन था। इस मामले में भी यह भारत और पश्चिम में बिल्कुल भिन्न रूप में फैला। स्वच्छन्दतावाद आर्थिक, वित्तीय, सामाजिक और यहाँ तक कि धार्मिक क्षेत्रों में आमूल-चूल परिवर्तनों से सीधे उत्पन्न होता हुआ सार रूप में पुराने समय के साथ पुनर्सम्बन्ध का एक व्यक्तिगत प्रयास था। यद्यपि कोई सीधा सम्बन्ध तो नहीं, तथापि इसने प्रकृति को उसके स्थान पर पुनः स्थापित करके उच्च शक्तियों से पुनर्सम्बन्ध की आवश्यकता को पूर्ण किया। साहित्यिक अर्थों में दर्शनशास्त्र और व्यक्तिगत अभिरुचि के बौद्धिक विषयों में खोज करते हुए स्वच्छन्दतावादी आधुनिकता के जनक थे जहाँ शुष्क तर्क और कारण का स्थान रचनात्मक कल्पना ने ले लिया।

स्वच्छन्दतावाद ने दैवीय प्रेरणा के रूप में संगठित धर्म द्वारा समर्थित शिक्षाओं से प्रकृति की ओर प्रस्थान किया। मानवता से जुड़ाव के रूप में प्रकृति के विषय प्रमुख हो गए। समाज के भौतिक और परम्परागत दृष्टिकोण कृत्रिम के समान माने गए और प्रकृति का सम्मान, मानव अस्तित्व के मूलभूत तत्वों की ओर वापसी के रूप में देखा गया। स्वच्छन्दतावादियों के लिए प्रकृति सामान्य रूप से संसार और प्रायः विश्व से एक सहज सम्बन्ध प्रस्तुत करती थी।

अपने उद्‌भव काल में विदेशी होने के बावजूद अंग्रेजी भारत में विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के बीच सम्प्रेषण का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गई। इसके अतिरिक्त यह शिक्षा, साहित्यिक अभिव्यक्ति और सर्वोच्चता की भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई। अंग्रेजी में भारतीय साहित्य का आरम्भ 18वीं शताब्दी के अन्त और 19वीं शताब्दी के आरम्भ से पाया जाता है। उस समय तक अंग्रेजी शिक्षा भारत में ब्रिटिश शक्ति के तीन बड़े केन्द्रों – कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में कमोबेश भली-भाँति स्थापित हो चुकी थी।

भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यानक विषय हिन्दू धार्मिक साहित्य में अधिक प्रचलित हैं। भारतीय साहित्यिक सन्दर्भ में निश्चित ही प्रेमाख्यान प्रेम में डूबे दो विपरीत लिंग के व्यक्तियों से जुड़ा हुआ नहीं है। अपितु पराक्रम और सुसभ्यता प्राथमिक निर्णायक लक्षण थे जिनके इर्द-गिर्द प्राचीन भारत में प्रेमाख्यानक साहित्य लिखा गया था।

पश्चिमोन्मुख अभिजात्यों द्वारा अंग्रेजी के अंगीकरण ने भारतीय अंग्रेजी लेखन की प्रक्रिया को तेजी से आगे बढ़ाया। आरम्भिक विषय प्रायः पश्चिमीकृत प्रेम पर आधारित होते थे यद्यपि कभी-कभार भीतरी जीवन पर भारतीय चिन्तन

से अलंकृत भी होते थे। जब भारतीय लेखकों और चिन्तकों ने स्वयं की मनीषा को खोजा तब कहीं भारतीय विषयों पर विलक्षण रत्न उदित हुए। पश्चिमीकृत प्रेमाख्यानक विषय नेपथ्य में चले गए चूँकि उनका स्थान भारतीय प्रेमाख्यानों, शोषण की रुक्ष कहानियों ने ले लिया जो अन्ततः ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध कहानियों में परिणत हुईं।

आरम्भिक 19वीं शताब्दी में हैनरी डेरोजियो और माइकल मधुसूदन दत्त ने राजा राममोहन राय का अनुसरण किया। माइकल मधुसूदन दत्त ने अंग्रेजी में महाकाव्य लिखना आरम्भ किया, किन्तु बाद के वर्षों में वे अपनी मातृभाषा बांग्ला की ओर वापस लौट आए। 21 वर्ष की अल्पायु में ही मृत्यु को प्राप्त होने वाली तोरू दत्त (1855-1876) की कविताओं और बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास 'राजमोहनस वाइफ' ने अंग्रेजी में भारतीय साहित्य के प्रारम्भिक उदाहरणों के तौर पर स्वीकृति पाई।

तोरू दत्त ने केवल अंग्रेजी में काव्य रचना ही नहीं की अपितु रोचक तौर पर फ्रैंच काव्य का अनुवाद भी किया। उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियों में 'ऐंशियंट बैलेड्स एण्ड लीजैंड्स ऑफ हिन्दुस्तान' शामिल हैं। भारतीय साहित्य में स्वच्छन्दतावादी विषयों में रवीन्द्रनाथ टैगोर, शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय, बंकिमचन्द्र चटर्जी, तारशंकर बन्दोपाध्याय, बिभूतिभूषण बन्दोपाध्याय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दीनबन्धु मित्र जैसे बंगाली लेखकों ने दिलचस्पी ली। इस काल के भारतीय नवजागृत लेखकों ने मुख्यतः पश्चिमी नैतिक विषयों और लगभग पश्चिमी मानसिकता पर ध्यान केन्द्रित किया।

पूर्व स्वतंत्रता काल में रक्तपात, जीवन की क्षति, विरोध, घेराबन्दी, रात की साहसिक व निर्भीक पूर्व निश्चित भेंटें, राष्ट्रवादी गुणगान, अंग्रेजों से घृणा जैसे प्रत्येक विषय लेखक के हाथों में चरम स्तर तक छायावादित रहे। न केवल कट्टर प्रेम ने केन्द्रीय स्थान ग्रहण किया बल्कि लगभग प्रेमाख्यायित, महिमामण्डित और मोहक पदों में अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए एक स्वतंत्रता सेनानी की प्रतिज्ञा की प्रशंसा हुई।

9.6 भारतीय विश्वदृष्टि पर मानवतावाद का प्रभाव

पश्चिमी और भारतीय पुनर्जागरण के बीच समानताएँ बिल्कुल स्पष्ट हैं। ये दोनों ही एक गहरे मानवतावाद से प्रेरित थे जिन्होंने पुरातन, मानव विरोधी मानकों, नियमों, व्यवहारों, कला, शिक्षा को मानव केन्द्रित चीजों में बदलने के प्रयास किए। यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण होगा कि पुनर्जागरण यूरोप में उत्तरकालीन मध्यकाल और आरम्भिक आधुनिक काल का एक बौद्धिक आन्दोलन था। इसने चर्च के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध मानवता में मानव पर ध्यान केन्द्रित किया। दूसरी ओर, भारतीय पुनर्जागरण 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आरम्भ हुआ। इसने साहित्यिक, आध्यात्मिक व सामाजिक विचारों का महत्वपूर्ण बहाव आगे बढ़ाया, जो स्वतन्त्रता आन्दोलन के रूप में चरम पर पहुँचा। समग्र विश्लेषण के लिहाज से भारतीय पुनर्जागरण पश्चिमी पुनर्जागरण से प्रभावित था तथा उसकी आत्मा से जुड़ा हुआ था। निश्चित तौर पर यह मुख्यतः शिक्षा, बाल-विवाह, सती-विरोधी कानून के क्षेत्रों में, पश्चिम से प्रेरित सुधारों की ओर ले गया। ये सभी मूल रूप से मानवतावादी थे।

19वीं शताब्दी के जर्मन इतिहासकार जॉर्ज वोइट (1827-91) ने 'अंधकार युग' पद देने वाले पेट्रॉर्क को प्रथम पुनर्जागरण मानवतावादी माना है। उनके अनुसार इस परिस्थिति के निवारण के लिए महान उत्कृष्ट लेखकों का अध्ययन व अनुसरण आवश्यक है।

पेट्रार्क और बोकेशियो के लिए सिसेरो महानतम ज्ञाता थे जिनका गद्य शास्त्रीय (लैटिन) और बोली (इटैलियन) दोनों के गद्य के लिए आदर्श बना। एक बार जब भाषा पर व्याकरणिक रूप से महारत् हासिल कर ली जाए तो इसे दूसरे चरण रूपक या वाग्मिता को प्राप्त करने में प्रयोग किया जा सकता है। सिसेरो का विचार था कि प्रतिपादन की यह कला केवल अपने लिए ही नहीं थी अपितु दूसरों अर्थात् सभी पुरुषों एवं महिलाओं को अच्छे जीवन की ओर ले जाने के लिए सहमत करने की क्षमता अर्जित करने में थी। इस प्रकार वाग्मिता दर्शनशास्त्र की ओर ले जाती है और उसमें समाविष्ट होती है।

पुनर्जागरण के मानवतावाद से प्रेरित प्राचीन पाण्डुलिपियों की पुनर्प्राप्ति भोगवाद और नवअफलातूनवाद जैसे प्राचीन दार्शनिक मतों का अधिक महान और सही ज्ञान लाई। उनका गैर-ईसाई ज्ञान मानवतावादियों ने दैवीय

रहस्योद्‌घाटन से व्युत्पन्न माना। इस प्रकार यह ईसाई नैतिकता के जीवन के लिए अपनाने योग्य माना गया। यूनानी और रोमन तकनीकी लेखन के बेहतर परिचय ने यूरोपीय विज्ञान के विकास को भी प्रभावित किया। जिस प्रकार कलाकार व आविष्कारक लियोनार्डो-द-विंची ने कला का पुनर्जागरण कृतियों को बेहतर बनाने के लिए मानव शरीर रचना विज्ञान, प्रकृति और मौसम के अध्ययन का समर्थन किया था, उसी प्रकार मध्यकालीन रूढ़िवाद के चंगुल से विश्वविद्यालयों को मुक्त करते हुए, उनमें अरस्तु के दर्शनशास्त्र के विधिवत् शिक्षण को सुधारने के लिए स्पेन में जन्मे मानवतावादी जुआन लुई विव्स (1493-1540) ने निरीक्षण शिल्प और प्रायोगिक तकनीकों का समर्थन किया। इस प्रकार पुनर्जागरण का अनुसरण करने वाले वैज्ञानिक युग का आगमन सम्भव बनाने, भौतिक ब्रह्माण्ड के आनुभाविक निरीक्षणों और प्रयोग पर आधारित स्वाभाविक दर्शनशास्त्र की पद्धति के ग्रहण के लिए मंच सज गया था।

यहाँ यह ध्यात्तव्य है कि मानवतावादियों के कार्यक्रम के सबसे चिरस्थायी परिणाम शिक्षा के क्षेत्र में थे। मानवतावादी मत इस विचार से जोशपूर्ण था कि प्राचीन भाषाओं और साहित्यों के अध्ययन ने महत्वपूर्ण जानकारी और बौद्धिक अनुशासन के साथ-साथ नैतिक आदर्श भी उपलब्ध कराए। इसका विश्वास था कि अपने समाज के भावी शासकों, नेताओं और पेशेवरों के लिए एक सभ्य रुचि कई धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक क्रांतियों से बचते हुए हमारी अपनी शताब्दी तक कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों द्वारा बिना रुकावट समृद्ध हुई।

9.7 भारतीय साहित्य में पुनर्जागरण

पुनर्जागरण का काल लगभग 14वीं से 17वीं शताब्दी के दौरान है। यह साहित्य, विज्ञान, कला, धर्म और राजनीति के उद्‌भव व परम्परागत स्रोतों पर आधारित ज्ञान के पुनरुत्थान का आन्दोलन था। साथ ही, यह चित्रकला में अनुरेखीय परिप्रेक्ष्य के विकास और क्रमिक किन्तु व्यापक शैक्षिक सुधारों को सम्मिलित करते सांस्कृतिक आन्दोलन को सम्बोधित करता है। इसका आरम्भ उत्तर मध्यकाल में फ्लोरेंस में हुआ। तत्पश्चात् यह पूरे यूरोप में फैला। इस बौद्धिक रूपान्तरण ने अनेक बौद्धिक लक्ष्यों में क्रांति के साथ-साथ सामाजिक व राजनीतिक उथल-पुथल भी देखी। सम्भवतः रैनेसां मुख्य रूप से अपने कलात्मक विकासों और लियोनार्डो द विंची व माइकल एंजेलो जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों को उत्पन्न करने के लिए जाना जाता है जिन्होंने 'पुनर्जागरण मनुष्य' जैसा शब्द प्रेरित किया। इटली में इसके उदय और संरक्षण के सम्बन्ध में विभिन्न परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं। ये अनेक तत्वों पर केन्द्रित की जाती हैं जिनमें उस समय के फ्लोरेंस की सामाजिक व नागरिक विशिष्टताएँ भी सम्मिलित हैं जैसे कि उसका राजनीतिक ढाँचा, उसके प्रमुख गृह मेडिसी का संरक्षण और ऑटोमन तुर्कों के हाथों कॉन्सटॅनटिनोपोल का पतन जिसके कारण ग्रीक विद्वान और ग्रंथ इटली में आए।

पुनर्जागरण मूल रूप से अतीत से प्रेरणा और भविष्य के पुनर्निर्माण की योजना के रूप में समझा जाता है। इस प्रकार, पुनर्जागरण एक राष्ट्र के जीवन में नए युग के आगमन जैसा है। अंग्रेजों के आगमन और बंगाल के राजनीतिक विनाश के बाद वहाँ भारत को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए एक व्यापक और गहन आन्दोलन का विकास हुआ। निश्चित रूप से यूरोपीय समृद्धि प्रेरणा का कारण थी और सभी बड़ी हस्तियाँ खुलकर वर्ड्सवर्थ, शैली, बाइरन, माइकल एंजेलो व विंची की बराबरी करने की बात कह रही थी।

भारतीय साहित्य में पुनर्जागरण के अन्तर्गत प्रसिद्ध लेखकों की कई महत्वपूर्ण कृतियाँ आती हैं। 19वीं शताब्दी के मध्य की शुरुआत में हिन्दू पुनर्जागरण से भारतीय साहित्य ने एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में नई शुरुआत का अनुभव किया। यह मुख्यतः बंगाल प्रान्त में केन्द्रित था। रवीन्द्रनाथ टैगोर, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय, बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे महान लेखकों ने पुनर्जागरण काल के दौरान भारतीय साहित्य में एक नई विधा स्थापित करके महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बांग्ला साहित्य के विपरीत अन्य क्षेत्रीय साहित्य 19वीं शताब्दी के अन्त में प्रभावित और समृद्ध हुए। 20वीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य ने पश्चिमी स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित स्वच्छन्दतावादी लहर देखी और स्वदेशी भाषाओं के शुद्ध सामंजस्य व सन्तुलन पर बल दिया। वे प्रेरणा के लिए स्वच्छन्दतावादी रचनाकारों - वर्डस्वर्थ, कॉलरिज, ब्लेक, शैली और कीट्स की ओर देखते थे। वे फ्रांसीसी क्रान्ति और अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी आलोचना के 'घोषणा-पत्र' कहे

जाने वाले 'प्रीफेस टू लिरिकल बैलेड्स' से प्रभावित थे। तथापि उन्होंने मूल पश्चिमी प्रेरणा में एक भारतीय संवेदना उत्पन्न की।

काव्य की स्वच्छन्दतावादी शाखा से प्रेरित हिन्दी काव्य का अपेक्षाकृत नूतन काल 'छायावाद' नाम से जाना जाता है। इस काल से सम्बन्धित साहित्यिक हस्तियाँ 'छायावादी' के नाम से जानी जाती हैं। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा और सुमित्रानन्दन पन्त छायावाद के चार प्रमुख कवि हैं। नव स्वच्छन्दतावाद का यह काल हिन्दी कविता की किशोरावस्था के रूप में निरूपित किया जाता है। यह अभिव्यक्ति के सौन्दर्य, तीव्र संवेदना के प्रवाह और रूढ़िवाद व उपदेशवाद के विरुद्ध विद्रोह के रूप में चिह्नित है। इस युग के चार प्रतिनिधि कवि हिन्दी काव्य में सर्वश्रेष्ठ का प्रतिनिधित्व करते हैं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन से कवियों का भावात्मक लगाव, भव्य प्राचीन संस्कृति की सुविस्तृत आत्मा को समझने व आत्मसात् करने का उनका प्रयास उस युग का एक अनूठा लक्षण है।

जैसा कि हम पीछे पढ़ चुके हैं कि हिन्दी साहित्य में शुरू हुई ये नई साहित्य धाराएँ पश्चिमी साहित्य आन्दोलनों से प्रभावित थीं। पुनर्जागरण, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता आदि इन सभी साहित्य धाराओं पर पश्चिमी साहित्य आन्दोलनों का गहरा प्रभाव था। किन्तु यह ध्यातव्य है कि पश्चिम से प्रेरित ये सभी साहित्य धाराएँ अपने स्वरूप और विषय चयन में लगभग पूर्णतः भारतीय थीं। विषय चयन, शिल्प और भाषा की दृष्टि से इन सभी धाराओं के प्रमुख रचनाकारों ने एक नवीन एवं मौलिक दृष्टि का परिचय दिया।

जहाँ छायावाद भारतीय स्वाधीनता और विराटता की भावना से ओतप्रोत था वहीं प्रगतिवाद में गूँजने वाला स्वर मार्क्सवादी आन्दोलन से प्रभावित होकर भी भारतीय जमीन और किसान-मजदूरों के हितों से जुड़ा हुआ था। प्रयोगवाद और नई कविता चाहे पश्चिमी साहित्य में होने वाले प्रयोगों के बाद भारत आए, लेकिन यहाँ के रचनाकारों ने उन्हें एक पूर्ण भारतीय आस्वाद से भिगोने का प्रयास किया। स्पष्टतः इसे ही विचारों का रूपान्तरण एवं अभिग्रहण कहा जाता है, जहाँ विचार तो आयातित हों, लेकिन वह पूर्णतः आयातित न हों अपितु अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित अथवा अभिगृहीत हों।

9.8 विश्व साहित्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव

हम इकाई 8 में पढ़ चुके हैं कि मार्क्सवाद जैसे विचार ने अनुवाद की सहायता से विश्वक्रम को उलट दिया। मार्क्स के दिए हुए सैद्धान्तिक ढांचे पर पूरा उतरने की खोज में सम्पूर्ण विश्वक्रम बदल गए तथा उत्पादन, सत्ता तंत्र और स्वामित्व प्रतिमान उलट गए। मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक विचारों के सहारे सम्पूर्ण भूमण्डल दो संसारों में विभक्त हो गया। शैक्षिक अनुशासनों की व्यापक श्रेणी में अध्ययन करने वाले शोधार्थियों ने अब इतिहास और समाज की मार्क्सवादी समझ को अपना लिया है। इन अनुशासनों में पुरातत्व विज्ञान, मानव विज्ञान, मीडिया अध्ययन, राजनीतिक विज्ञान, रंगमंच, इतिहास, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, सांस्कृतिक अध्ययन, शिक्षा, अर्थशास्त्र, भूगोल, साहित्यिक आलोचना, सौन्दर्यशास्त्र, विवेचनात्मक मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र आते हैं। इनके अतिरिक्त मार्क्सवाद ने राजनीतिक शासन, औद्योगिक व सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ-साथ सशक्त संघर्ष और क्रान्तिकारियों को भी प्रेरित किया।

द्वंद्वात्मक विचारों के प्रवर्त्तक हीगल एक आदर्शवादी थे और मार्क्स ने द्वन्द्ववाद को भौतिकवाद के आधार पर लिखने का प्रयास किया। सन् 1859 में 'अ कॉन्ट्रीब्यूशन टू दि क्रिटीक ऑफ पॅलिटिकल इकॅनोमी' के आमुख में उन्होंने इतिहास के अपने सिद्धान्त के भौतिकवादी पक्ष का सार प्रस्तुत किया। एडम स्मिथ से यह विचार लिया कि सम्पत्ति का आधार श्रम है। यह व्यावहारिक और सैद्धान्तिक विभेद मार्क्स की प्रथम अन्तर्दृष्टि थी। इसने उन्हें 'अतिरिक्त मूल्य' का सिद्धान्त विकसित करने में सहायता दी जिसने उनकी रचनाओं को एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो की कृतियों से अलग किया। मार्क्स ने डार्विन की 'दि ओरिजन ऑफ स्पिशीज़' पढ़ी और वर्ग संघर्ष के अपने सिद्धान्त का समर्थन करने में इसके महत्व को पहचाना। उन्होंने दावा किया कि उनके सिद्धान्त और डार्विन के कार्य दोनों ने मानव समाज के आन्तरिक संघर्षों की व्याख्या करने में सहायता दी और प्रकृति की प्रक्रियाओं के लिए एक भौतिकवादी व्याख्या उपलब्ध करवाई।

सन् 1883 में मार्क्स की मृत्यु के बाद से विश्वभर के अनेक समूहों ने अपनी राजनीति और नीतियों के लिए सैद्धान्तिक आधारों के रूप में मार्क्सवाद का सहारा लिया, जो प्रायः नाटकीय ढंग से भिन्न और परस्पर विरोधी सिद्ध हुए हैं। पहले बड़े राजनीतिक विभाजनों में से एक सुधारवाद के समर्थकों और साम्यवादियों के बीच हुआ। सुधारवादियों का तर्क था कि समाजवाद के लिए परिवर्तन वर्तमान बुर्जुआ संसदीय ढाँचों में हो सकता है जबकि साम्यवादियों का दावा था कि समाजवादी समाज में परिवर्तन के लिए एक क्रान्ति और पूँजीवादी राज्य का विघटन आवश्यक है। सुधारवादी प्रवृत्ति बाद में सामाजिक लोकतंत्र के नाम से जानी गई। यह द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय (Second International) से जुड़ी अधिकतर पार्टियों में प्रभावी हुई और प्रथम विश्वयुद्ध में इन पार्टियों ने अपनी स्वयं की सरकारों का समर्थन किया।

व्लादिमीर लेनिन के नेतृत्व में अक्टूबर क्रांति (1917) मजदूरों के राज्य के बारे में मार्क्सवादी विचारों को व्यवहार में लाने का प्रथम बड़े पैमाने का प्रयास थी। नई सरकार ने प्रतिक्रांति, गृहयुद्ध और विदेशी हस्तक्षेप का सामना किया। जोनाथन बुल्फ के अनुसार ब्रिटेन की मुख्य सोशलिस्ट पार्टी ने चौबीस घण्टों के भीतर ही क्रांति को मार्क्सवादी-विरोधी कहकर निन्दा की। लेनिन ने मार्क्सवाद के इस प्राथमिक सत्य की निरन्तर व्याख्या की कि समाजवाद की विजय के लिए अनेक उन्नत देशों के मजदूरों के संयुक्त प्रयासों की आवश्यकता है।

भारत में साम्यवाद ने एक दृढ़ लोकतांत्रिक रूप लिया जब इसने किसी और लोकतांत्रिक दल की तरह ही कार्य करने का निर्णय लिया। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस के ठीक बाद 17 अक्टूबर 1920 को कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना ताशकन्द में हुई। 1920 के दशक और 1930 के प्रारम्भ में पार्टी कई गुटों और कम समन्वय के साथ अव्यवस्थित थी। औपनिवेशिक अधिकारियों ने सभी कम्युनिस्ट गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इससे एक संगठित पार्टी बनाने का कार्य अत्यन्त कठिन हो गया। दिल्ली में कपड़ा श्रमिकों के आन्दोलन को बढ़ावा देने के लिए 24 दिनों के उपवास के बाद मृत्यु को प्राप्त होने वाले गुरू राधा किशन के पश्चात् साम्यवादी आन्दोलन अथवा विशेष रूप से सी.पी.आई. एक अग्रणी मोर्चे के रूप में उभरी। इसने उस लोकप्रिय भ्रांति को दूर किया कि साम्यवादी मजदूरों और उनके परिवारों के लिए कोई सहानुभूति न रखने वाले क्रांतिकारी होते हैं। निस्स्वार्थता के इस आदर्श का अनुसरण पार्टी की अन्य राज्य इकाइयों ने भी किया। इससे सी.पी.आई. को अपना जनाधार विस्तृत करने का आधार मिला। 1957 में सी.पी.आई. सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभरी और साथ ही सी.पी.आई. ने केरल में राज्य चुनाव जीता। ऐसा पहली बार था कि एक कम्युनिस्ट पार्टी ने किसी भारतीय राज्य का शासन प्राप्त किया। 1964 में वैचारिक मतभेद पार्टी को विभाजन की ओर ले गए जब दो भिन्न पार्टी कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया गया - एक सी.पी.आई. की और दूसरी सी.पी.आई (एम.) की।

1967 में एक बार फिर से कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी) का विभाजन हुआ जिससे कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) का गठन हुआ। इसे सी.पी.आई.-एम.एल. (माओवादी) भी कहा जाता है।

तथापि अकादमिक मार्क्सवाद सशस्त्र संघर्ष के किसी भी रूप से बचता है। यह शैक्षणिक क्षेत्रों व लोगों तक सीमित है। यूरोप और उत्तरी अमेरिका में इसके आधिपत्य के कारण कभी-कभी इसे पश्चिमी मार्क्सवाद भी कहा जाता है। यह उन अकादमिक विषयों से सम्बन्धित है जहाँ मार्क्सवादी दृष्टिकोण और विचारधारा अपना लिए गए हैं। मार्क्सवादी स्त्रीवाद, स्त्रीवादी सिद्धान्त का एक अनुप्रकार है। यह स्त्रियों को स्वतंत्र करने के एक तरीके के रूप में, पूँजीवाद के विघटन पर ध्यान केन्द्रित करता है। मार्क्सवादी स्त्रीवाद मानता है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति महिलाओं के शोषण की जड़ है। यह पुरुषों व स्त्रियों के बीच आर्थिक असमानता, निर्भरता, राजनीतिक मतभेद और अन्ततः अस्वस्थ्य सामाजिक सम्बन्धों को बढ़ावा देती है।

इन उदाहरणों द्वारा हम देख सकते हैं कि कैसे एक विचार विभिन्न सन्दर्भो में रूपान्तरित और पुनर्गठित किया जा सकता है। पहले उदाहरण में मार्क्सवादी विचार एक धर्मनिरपेक्ष और अहिंसक राजनीतिक दल के निर्माण की ओर ले गया। फिर इसने माओवाद के रूप में एक हिंसक संघर्ष को प्रेरित किया। और इनसे इतर इसका एक और रूप है अकादमिक मार्क्सवाद जो गैर-राजनीतिक भी है और अहिंसक भी।

9.9 साम्प्रदायिकता : एक व्यापक विच्छेद

1857-58 के भारतीय विद्रोह के दमन ने भारत को एक ऐसे काल में पहुँचा दिया जब भारत सीधे अंग्रेजी शासन

के अधीन हो गया। विशेषकर आरम्भिक 20वीं शताब्दी में राष्ट्रवाद के उदय के साथ इस अवधि में साम्प्रदायिक तनाव बहुत बढ़े। यद्यपि राष्ट्रीय मत की प्रधान संस्था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कुछ अंश तक सार्वभौम और व्यापक रूप से प्रतिनिधि थी तथापि प्रारम्भिक तौर पर अंग्रेजों ने भारतीय मुसलमानों को एक पृथक राजनीतिक व सांस्कृतिक पहचान बनाने के लिए उत्साहित किया। मुस्लिम लीग मुसलमानों के विविध राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक हितों को बढ़ावा देने वाले संगठन के रूप में उभरी।

इस प्रकार की नीतियों के सामाजिक-राजनीतिक प्रशासन ने अन्ततः भारत को कल्पित 'हिन्दूवादी' हिन्दुस्तान और इस्लामिक पाकिस्तान में विभाजित कर दिया। विभाजन पर आधारित अधिकांश विद्वतापूर्ण साहित्य ने उन राजनीतिक प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया है जो भारत के विच्छेदन और उससे 'संलग्न' हिंसा की ओर ले गई। बहुत से लोगों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि कौन सा पक्ष 'दोषी' रहा होगा और कितनी दूर तक साम्प्रदायिक विचारधारा ने धर्मनिरपेक्ष संगठनों और संवेदनशीलताओं के भीतर जगह बनाई है। विभाजन की ओर ले जाने वाले जटिल समझौतों व उनकी छोटी-छोटी बातों के साथ नेहरू, जिन्ना, आज़ाद, पटेल व अन्य व्यक्तियों पर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट रहा है। भारत व पाकिस्तान के बीच जिस ढंग से सीमाएँ खींची गई हैं उस पर पश्चिमी व पूर्वी मोर्चों पर समान रूप से साहित्य का महत्वपूर्ण संग्रह विद्यमान है।

हाल के वर्षों में विद्वतापूर्ण साहित्य ने एक भिन्न मोड़ लिया है। पहले उपेक्षित या सूक्ष्म माने जाने वाले विचारों के लिए यह अब अधिक सूक्ष्म तथा एकाग्र हो गया है। उदाहरण के लिए विभाजन और उसकी हिंसा से महिलाएँ जिस प्रकार से प्रभावित हैं उसके बारे में जागरूकता बढ़ी है। विशेषकर कई स्त्री विद्वानों व लेखकों ने महिलाओं के अपहरण, इन औरतों की पुनर्प्राप्ति के लिए भारत व पाकिस्तान की सरकारों के बीच हुए समझौतों और इन प्रबन्धों के पीछे अन्तर्निहित धारणाओं कि स्त्रियाँ अपने लिए नहीं बोल सकतीं, राष्ट्र की अस्मिता व सम्मान उसकी महिलाओं में निहित हैं, वे पुरुषों और राज्यों के बीच विनिमय की एक वस्तु के रूप में हैं, इन पर ध्यान केन्द्रित किया। विद्वानों की आरम्भिक पीढ़ियाँ मौखिक इतिहासों के प्रति चिन्तित नहीं थीं। किन्तु हाल ही में न केवल पीड़ितों से अपितु आवश्यकतानुसार कर्ताओं से भी मौखिक विवरण एकत्र करने के कई प्रयास हुए हैं।

आरम्भिक 1920 के दशक और 1945 के बीच कई लोगों ने फासीवाद को भविष्य का संकेत माना। फासीवादी दल अनेक यूरोपीय देशों में सत्ता में आए और फासीवाद से प्रभावित मतानुयायी विश्व के अन्य अनेक राष्ट्रों में एकाएक उभर कर सामने आए। इस प्रवृत्ति ने भारत जैसे विकासशील देशों में भी स्वयं को अभिव्यक्त किया। फासीवाद ने स्वदेशी राष्ट्रवादी आन्दोलन को भी आकर्षित किया, क्योंकि इसकी सक्रियतावादी विचारधारा समाजवादी प्रकार के आर्थिक सुधारों के साथ एक करने वाले राष्ट्रीय संदेश को जोड़ती थी। इसके विस्तार को इस तथ्य से सहायता मिली कि 1930 के दशक के दौरान इटली और नाजी जर्मनी के फासीवादी राज्य ब्रिटिश और फ्रांसीसी प्रभुत्व का विरोध करते थे। भारत की विशाल जनसंख्या जैसे अधीन औपनिवेशिक लोगों के लिए लंदन के शाही शासन का विरोध, इतने सारे भारतीयों को आकर्षित करने वाली विचारधारा का एकमात्र सबसे महत्वपूर्ण आयाम था। इसके अतिरिक्त भारत में वर्ण पर आधारित सामाजिक स्तर की लम्बी परम्परा (जाति व्यवस्था) और हिन्दू राष्ट्रवादियों द्वारा अशुभ पाई गई इस्लाम की बढ़ती हुई उपस्थिति ने इस उपमहाद्वीप में फासीवाद के समर्थन के लिए सहायक परिस्थितियाँ बनाईं।

फ्रांसीसी यूरोप और भारतीय उपमहाद्वीप के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध दोनों पर लागू हुआ। अर्थर डी गोबिन्यू और ह्यूस्टन स्टीवार्ट चैम्बरलेन जैसे यूरोपीय नस्लवादी विचारक इतिहास की अपनी ''जातिवादी' व्याख्या पर आधारित हिन्दू संस्कृति व धर्मग्रन्थों के लिए लम्बे समय तक आकर्षित रहे। मनुस्मृति जैसे भारतीय ऐतिहासिक दस्तावेज प्रारम्भिक 19वीं शताब्दी में उन अंग्रेजों द्वारा परिचित हुए जिन्होंने उनमें भारत पर अंग्रेज साम्राज्यवादी अधिकार को मजबूत करने का तरीका पाया। हिन्दू धार्मिक ग्रंथ विश्व में जातियों के पदानुक्रम की व्याख्या करते हैं। नस्लवादी विचारक इन प्राचीन लेखों को इस प्रमाण के रूप में देखते हैं कि श्वेत आर्य विश्व की मूल उत्कृष्ट जाति थे किन्तु वे स्थानान्तरण से एशिया व यूरोप तथा अधीनस्थ जातियों पर फैल गए। यूरोप में विकसित होता नस्लवाद अन्ततः नाजीवाद में परिणत हुआ। यह स्वास्तिक जैसे हिन्दू धर्म से लिए गए प्रतीकों पर बहुत निर्भर था।

गाँधी के अहिंसावादी विचार के विपरीत एक और मुख्य राजनीतिक नेता सुभाषचन्द्र बोस ने भारत को स्वतंत्र कराने के लिए सैन्य प्रक्रिया का समर्थन किया। बोस ने भारतीय राष्ट्रीय सेना के झण्डे तले हिन्दुओं को एकत्रित करने और आवश्यकता पड़ने पर सशस्त्र सेना का प्रयोग करके अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए बाध्य करने का प्रस्ताव दिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बोस ने भारत को स्वतंत्र कराने के लिए हिन्दुओं से कोई भी साधन प्रयोग करने के लिए कहा। चाहे इसका अर्थ जर्मनी, इटली और जापान की ध्रुवीय शक्तियों के समर्थन होने से ही हो। उन चरम् राष्ट्रवादी विचारधाराओं को बोस ने आकर्षक पाया। 1920 के दशक के उत्तरार्द्ध में बोस भारत में किसानों और श्रमिकों के केन्द्रित संघटन पर आधारित समानान्तर सरकार बनाने के लिए कहते सुने जा सकते थे।

9.10 सारांश

इस इकाई में हमने युगों से मनुष्य के विचारों की यात्रा को संक्षिप्त रूप में पार किया। हमने पाया कि ये मानवता को आगे बढ़ाने में सहायक हैं। प्रत्येक युग अपने मार्गदर्शक विचारों और उन्हें प्रतिपादित करने वाले मनुष्यों से पारिभाषित किया जाता है। यद्यपि किसी भी विचार के प्रसार के लिए विचारों की क्षमता और उनके रचनाकार के व्यक्तित्व के अलावा हमें अनुवाद की शक्ति की आवश्यकता होती है। जब कोई विचार अपनी सीमाओं के परे यात्रा करता है, तब वह मूलभूत और तात्विक धारणाओं से अनभिज्ञ लोगों से मिलता है। इस यात्रा में ये विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते-जाते कई रूपों में बदलते हैं। अर्थात् जब ये विचार किसी नई संस्कृति में जाते हैं तो वहाँ की संस्कृति और जरूरत के अनुसार अपने स्वरूप में बदलाव भी लाते हैं। इसे ही विचारों का रूपान्तरण एवं अभिग्रहण कहते हैं। इसी के आधार पर वे किसी नई संस्कृति एवं समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। ऐसे में अनुवाद अधिकांशतः स्थानीय विचार को भूमण्डलीय विचार में बदलते हुए न केवल भाषिक व साहित्यिक दूरी को अपितु उसकी सांस्कृतिक खाई को भी भर देता है। प्रस्तुत इकाई में हमने विचारों के रूपान्तरण एवं अभिग्रहण के विषय में विस्तार से चर्चा की। इस इकाई के माध्यम से आप विचारों की यात्रा के विभिन्न आयामों को समझ गए होंगे। अगली इकाई में हम भूमण्डलीकरण एवं उपभोक्ता संस्कृति की चर्चा करेंगे।

9.11 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) बाइबिल के काल में अनुवाद के विकास की चर्चा कीजिए। किस सीमा तक यह ईसाई धर्म के प्रचार में अनिवार्य रहा है?
2) विचारों के रूपान्तरण पर अन्तर्सांस्कृतिक प्रभावों से आप क्या समझते हैं?
3) अहिंसा, नॉन वॉइलेंस और सर्वोदय आन्दोलन किस प्रकार सम्बन्धित हैं?
4) पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य में पुनर्जागरण के विकास की व्याख्या कीजिए।
5) गाँधीवाद महान विचारकों की अनूदित रचनाओं पर आधारित था? चर्चा कीजिए।
6) मार्क्सवाद ने अनुवाद में विचारों की शक्ति का प्रदर्शन किया। टिप्पणी कीजिए।
7) क्या विचार मानवगाथा के विकास में सहायक थे या मानवगाथा विचारों के विकास में सहायक थी?
8) विचारों की यात्रा में किसी एक आन्दोलन का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

9.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Bassnett, S., 1991. Translation Studies, rev. ed, London: Routledge.
- Berlin, Isaiah, 1999. The Roots of Romanticism. London: Chatto & Windus.
- Bottomore, Thomas, ed. A Dictionary of Marxist Thought. Blackwell, 1991. Brotton, Jerry. The Renaissance: A Very Short Introduction, 2006.

- Bryant, Edwin, 2001. The Quest for the origins of Vedic culture. O U P .
- Campbell, Gordon, 2003. The Oxford Dictionary of the Renaissance.
- Chakrabarti, Dilip, 1997. Colonial Indology, Munshiram Manoharlal: New Delhi.
- Desai, Mahadev. The Gospel of Selfless Action, or, The Gita According To Gandhi. Navajivan Publishing House: Ahmedabad: First Edition 1946. Other editions: 1948.
- Easwaran, Eknath, 1997. The Upanishads, Nilgiri Press.
- Edward Said, Orientalism New York: Random House.
- Gandhi, M. K. (in English; trans. from Gujarati) Unto this Last: A paraphrase. Ahmedabad: Navajivan Publishing House
- Gandhi, M.K. An Autobiography or The Story of My Experiments With Truth. Ahmedabad: Navajivan Publishing House. 2nd edition.
- Gandhi, M.K., 1956. The Gandhi Reader: A Sourcebook of His Life and Writings. Homer Jack (ed.) Grove Press, New York.
- Gerald James Larson, The Song Celestial: Two centuries of the Bhagavad Gita in English, Philosophy East and West: A Quarterly of Comparative Philosophy University of Hawai'i Press. 1981.
- Harvey, Peter, 1990. An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices. Cambridge University Press.
- Keown, Damien, 2003. Dictionary of Buddhism. Oxford University Press.
- L. Venuti (Ed.), The translation studies reader (pp. 84-93). London: Routledge.
- Metcalf, Barbara; Metcalf, Thomas R., 2006. A Concise History of Modern India (Cambridge Concise Histories). Cambridge and New York: Cambridge University Press.
- Mueller, Friedrich Max, 1859. A history of ancient Sanskrit literature so far as it illustrates the primitive religion of the Brahmans, Williams & Norgate.
- Mukherjee, S. N. Jones, Williams, 1968. A study in eighteenth-century British attitudes to India. London, Cambridge University Press.
- Norman L. Geisler, William E. Nix., 1986. A General Introduction to the Bible. Moody Publishers.
- Parmeshwaranand, Swami, 1986. Encyclopaedic Dictionary of Upanisads, Sarup and Sons.
- Peter Fritzsche, 1990. Rehearsals for Fascism: Populism and Political Mobilization in Weimar Germany. New York: Oxford University Press.
- Radhakrishnan, S., 2002. The Bhagavad Gita, HarperCollins.
- Robinson, Douglas, 2002. Becoming a Translator: An Introduction to the Theory and Practice of Translation, London: Routledge.
- Y. Masih, 2000. In : A Comparative Study of Religions, Motilal Banarsidass Publication, Delhi-51.